Barcode : 99999990030187
Title - Atmmimasa
Author - Jaichander Ji
Language - Sanskrit
Pages - 147
Publication Year - 1949
Barcode EAN.UCC-13

प्रकाशक—
राजमल पदमजात्या मन्नी,
मुनिअनंतकीर्तिग्रंथमाला
कालबादेवी रोड बम्बई।

मुद्रक—
मगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ४२४,
ठाकुरद्वार, बम्बई।

श्री वीतरागायनम

नियमावली ।

मुनि श्री अनन्तकीर्ति ग्रथमाला ।

१ यह ग्रन्थमाला श्री अनन्तकीर्ति मुनिकी स्मृतिमें स्थापित हुई है जो दक्षिण कनड़ाके निवासी दिगम्बर साधु चारित्रके तत्व ज्ञानपूर्वक पालनेवाले थे और जिनका देहत्याग श्री गो० दि० जैन सिद्धान्त विद्यालय मुरैना (ग्वालियर) हुआ था ।

२ इस ग्रन्थमाला द्वारा दिगम्बर जैन संस्कृत व प्राकृत ग्रन्थ भाषाटीका सहित तथा भाषाके ग्रन्थ प्रबधकारिणी कमेटीकी सम्मतिसे प्रकाशित होंगे ।

३ इस ग्रन्थमालामें जितने ग्रन्थ प्रकाशित होंगे उनका मूल्य लागत मात्र रक्खा जायगा लागतमें ग्रन्थ सम्पादन कराइ संशोधन कराई छपाई जिल्द बधाई आदिके सिवाय आफिस खच भाडा और कमीशन भी शामिल समझा जायगा ।

४ जो कोइ इस ग्रन्थमालामें रु १००) व अधिक एकदम प्रदान करेंगे उनको ग्रन्थमालाके सब ग्रन्थ विनान्योछावरके भेट किये जायगे यदि कोई धर्मात्मा किसी ग्रन्थकी तैयारी कराइम जो खर्च परे वह सब देवेंगे तो ग्रन्थके साथ उनका जीवन चरित्र तथा फोटो भी उनकी इच्छानुसार प्रकाशित किया जायगा यदि कमती सहायता देंगे तो उनका नाम अवश्य सहायकोंमें प्रगट किया जायगा इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित सब ग्रन्थ भारतके प्रान्तीय सरकारी पुस्तकालयोंमें व म्यूजियमोंकी लायब्रेरियोंमें व प्रसिद्ध २ विद्वानों व त्यागियोंको भेटस्वरूप भेजे जायगे जिन विद्वानोंकी सख्या २५ से अधिक न होगी ।

५ परदेशकी भी प्रसिद्ध लायब्रेरियों व विद्वानोंको भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ मन्त्री भेट स्वरूपमें भेज सकेंगे जिनकी सख्या २५ से अधिक न होगी ।

६ इस ग्रन्थमालाका सर्व काय एक प्रबधकारिणी सभा करेगी जिसके सभासद ११ व कोरम ५ का रहेगा इसमें एक सभापति एक कोषाध्यक्ष एक मन्त्री तथा एक उपमन्त्री रहेंगे ।

७ इस कमेटीके प्रस्ताव मन्त्री यथा संभव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूपसे स्वीकृत करावेंगे ।

८ इस ग्रन्थमालाके वार्षिक खचका बजट बन जायगा उससे अधिक केवल १००) मन्त्री सभापतिकी सम्मतिसे खच कर सकेंगे ।

९ इस ग्रन्थमालाका वर्ष वीर सम्वत्से प्रारम्भ होगा तथा दिवाली तककी रिपोर्ट व हिसाब आडीटरका जचा हुआ मुद्रित कराके प्रति वर्ष प्रगट किया जायगा ।

१० इस नियमावलीमें नियम न १-२-३ के सिवाय शेषके परिवर्तनादि पर विचार करते समय कमसे कम ९ महाशयोंकी उपस्थिति आवश्यक होगी ।

श्री दि० जैन मुनि अनन्तकीर्तिग्रंथमालाके मुख्यसहायक महाशय।

१२०२) सेठ गुरुमुखरायजी मुखानन्दजी बम्बई

११०१) मुनिमहाराजके आहार दान समय

११०१) यात्रार्थ आये हुए दिल्लीके संघके समय

११०१) से हुकमचन्दजी जगाधरमलजी दिल्ली

११०१) से उम्मेदसिंहजी मुसद्दीलालजी-अमृतसर

५०१) श्री जैनग्रंथरत्नाकरकार्यालय-बम्बई

४११) श्री धर्मपत्नी लाला रायबहादुर हजारीलालजी दानापुर

२५१) से नाथारंगजी वाले-बम्बई

२०१) से चुन्नीलाल हेमचन्दजी बम्बई

१०१) साहु सुमतिप्रसादजी-नजीबाबाद

१०१) लाला जुगलकिशोरजी-हिसार

१०१) श्री जैनधर्मवर्धिनी सभा बम्बई।

१०१) राजमलजी बडजात्या बम्बई।

१०१) से बैजनाथजी सरावगी हावरस।

१०१) से कस्तूरचन्द बेचरदासजी बम्बई।

१०१) लाला जैनेन्द्रकिशोरजी।

ठि—उत्तमचन्द भरोसालाल-आगरा।

भूमिका ।

ग्रन्थकर्ताओंका परिचय

स्वामी समतभद्राचार्य

सकलदर्शनपादपपारिजात अनवद्य अनाद्यनिधन इस दिगम्बर जैन सम्प्रदायमें तीर्थेश भगवान् श्री १००८ महावीरस्वामीजीके मोक्ष गये बाद वीरप्रभुके सर्वहितकर शान्तिप्रद धर्मका प्रचार करने वाले अनेक प्रतिभाशाली महर्षि तथा विद्वान् ऐसे हो गये हैं कि जिनके वाङ्मय तथा कृत्य कलिकालमें उस तीर्थंकताके पूर्ण उद्द्योतक हैं। क्योंकि उन्होंने भगवानके शीतल सौम्य सुगन्ध सिद्धान्तका प्रचार उस ढंगके साथ किया है कि जिस तरह मलय चन्दन सुगन्धित दक्षिण वायु करता है उन ऋषियोंमें प्रभुधर्मके यथार्थ प्रवर्त्तक अनेक ऋषियोंके बाद श्री स्वामी समन्तभद्राचार्यजी एक ऐसे प्रतिभाशाली विद्वान् होगये हैं कि जिनकी कृति तथा अतिशयपाण्डित्यप्रतिभाप्रभावके गौरवका प्राय सभी प्रतिभाशाली ऋषि तथा विद्वानोंने बहुतही स्तुत्य प्रणामके साथ कीर्तन किया है। जैसे कि भट्टाकलङ्कदेवजी तथा स्वामी विद्यानन्दीने अपने अष्टशती तथा अष्टसहस्री ग्रथमें मगलरूप पद्यों द्वारा स्वामीजीको वर्द्धमान भगवान्के विशेषणसे निवेशित कर भगवान् सदृशही नमस्कार भाव प्रदर्शित किया है। जैसे कि—

श्रीवर्द्धमानमकलङ्कमनिन्द्यवन्द्य—
पादारविन्दयुगल प्रणिपत्य मूर्ध्ना ।
भव्यैकलोकनयन परिपालयन्तम्
स्याद्वादवर्त्म परिणौमि समन्तभद्रम् ॥

(अष्टशति)

श्रीवर्द्धमानमभिवन्द्यसमन्तभद्र-
मुद्भूतबोधमहिमानमनिद्यवाचम् ।
शास्त्रावतारर्रचितस्तुतिगोचरात्त-
मीमासितं कृतिरलङ्क्रियते मयास्य ॥

श्रेय श्रीवर्द्धमानस्य परमजिनेश्वर-
समुदयस्य समन्तभद्रस्येत्यादि,

(अष्टसहस्री)

अमोघवर्ष राजाके गुरु श्री जिनसेनजीने आपका महान् कवियोंमें प्रभा तथा चार प्रकारके कवियोंके मस्तकमें भूषणरूपसे विराजमान सामन्तभद्रीय यशको चूड़ामणिरत्नकी महनीयताप्रे निवेदित कर साधु साधकताका परिचय दिया है।

नमः समन्तभद्राय महते कविवेधसे ।
यद्वचो वज्रपातेन निर्भिन्नाः कुमताद्रयः ॥
कवीनां गमकानां च वादिनां वाग्मिनामपि ।
यशः सामन्तभद्रीयं मूर्ध्नि चूडामणीयते ॥

(आदि पुराण)

महाकवि श्री वादीभसिंहने इनको साक्षात् सरस्वती की मुख्य विहार-भूमिरूप वर्णनकर आपके अतिशय पाण्डित्यको प्रदर्शित किया है।

सरस्वतीस्वैरविहारभूमयः समन्तभद्रप्रमुखा मुनीश्वराः ।
जयन्ति वाग्वज्रनिपातपाटितप्रतीपराद्धान्तमहीध्रकोटयः ॥

(गद्यचिन्तामणि)

कवि श्री बालचन्द्रजी महाराजने पुरुषोत्तमके कण्ठको सुशोभित करनेमें आभूषणभूत माणिक्यमालाके समान इनकी वाणीकी दुर्लभताका विशेषतासे वर्णन इस प्रकार लिखा है

गुणान्विता निर्मलवृत्तमौक्तिका
नरोत्तमैः कण्ठविभूषणीकृता ।
नहारयष्टिः परमैरदुर्लभा
समन्तभद्रादिभवा च भारती ॥

(चन्द्रप्रभचरित)

श्री शुभचन्द्रगणीजीने इनके वचनोंको अज्ञानान्धकार निवृत्तिके लिये सूर्य किरणोंके समान तथा इनके सामने दूसरोंको हास्यताके पात्र खद्योत समान कहा है।

समन्तभद्रादिकवीन्द्रभास्वतां
स्फुरन्ति यन्नामलसूक्तिरश्मयः ।

व्रजन्ति खद्योतवदेव हास्यता
न तत्र किं ज्ञानलवोद्धताजना ॥

(ज्ञानार्णव)

वसुनदि सिद्धान्त चक्रवर्तिने समतभद्र सम्बधि मतको तथा स्वामीजीको बड़े ही निबाध निर्दोष भद्र विशेषणोंद्वारा नमस्कार कर आपने अपना बहुतही स्तुत्य मनोज्ञ उदारता दिखलाइ है ।

रक्षीभूतपरम निरुक्तिनिरत निर्वाणसौख्यप्रद
कुज्ञानातपवारणाय विधृत छत्र यथा भास्वरम् ।
सज्ञानर्नययुक्तिमौक्तिकरसे सशोभमान पर
वन्दे तद्गतकालदोषममल सामन्तभद्र मतम् ॥
समन्तभद्रदेवाय परमार्थविकल्पिने ।
समन्तभद्रदेवाय नमोस्तु परमात्मने ॥ (आप्तमीमासा वृत्ति)

1 मल्लिषेण प्रशस्तिम—आपकी किस जगह कैसी अवस्था रही तथा आपके निर्भीकपाडित्यम उत्कटवादीपना, और भस्मकसरीखे भयकर रोगके नाश करनेमें दक्ष, पद्मावती सरीखेदेवताद्वारा सन्मानित, भक्तिविशिष्ट मत्रहपवचनोद्वारा चन्द्र प्रभ प्रतिबिंबको प्रगट कर असमवतामें भी सभवताका प्रगट परिचय दिया, जैनमार्गकी सवत्र कल्याणकारी प्रभावना प्रगट का, पटना मालव सिंध ढाका आदि देश नगर विजेता, तथा जिनकी शक्तिप्रभावसे शक्ति प्रभव जिव्हाप्रभा भी कुठित हो जाती थी, इत्यादि विशेषतासे विशेष वर्णन है । जैसेकि—

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्ड ,
पुण्ड्रेण्ड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मिष्टभोजी परिव्राट् ।
वाराणस्यामभूव शशधरधवल पाण्डुरागस्तपस्वी,
राजन् यस्यास्ति शक्ति स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी ॥ १ ॥

चन्द्रो भस्मकभस्मसात्कृतपटु पद्मावतीदेवता—
दत्तोदात्तपद स्वमत्रवचनव्याहृतचन्द्रप्रभ ।
आचार्य स समन्तभद्रयतिवद् येनेह काले कलौ
जैन वर्त्म समन्तभद्रमभवद्भद्र समन्तान्मुहु ॥ २ ॥

पूर्व पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुठक्कविषये काञ्चीपुरे वैदिशे ।

मासोऽह करहाटक बहुभट विद्योत्कट सङ्कटम्
वादार्थी विचराम्यह नरपते शार्दूलविक्रीडितम् ॥ ६ ॥
अवदुतरमति झटिति स्फुटपटुवाचाटधूर्जेटीजटा
चादिनि समन्तभद्र स्थितवति तव सदासि भूप कान्येषाम् ॥ ४ ॥
(श्रीमन्द्विपेण प्रशस्ति)

स्वामीजीके विषयमें और भी अनेक विद्वानोंने भव्यभावुक बहुतही उदार प्रगट किये है व सभी स्वामीजीके यथातथ्य गुणके प्रदर्शक है। इन सब प्रमाणोंसे यह सहजही समझम आजाता है कि स्वामीजीमें एक अनोखीही विद्युतविद्वत्ता थी ये स्वामी जैसे दार्शनिक तथा स्तुतिकार विद्वान हो गये है तसेही दार्शनिक तथा स्तुतिकार सिद्धसेन दिवाकर भी दिगम्बरसम्प्रदायमें प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये है। इनका समय विद्याभूषण एम ए आदि पद धारक शतीशचन्द्रजी वगैरे ने ईसाकी ६ ठी शताब्दी निर्णित कर लिखा है। तथा इनका यशोगान भी इसाकी छट्ठी शताब्दी के बाद आचार्य जिनसेनादि द्वारा मिलता है। ये आचार्य यद्यपि प्रतिभाशाली भद्राचार्यजीका उनके पीछेके महर्षि तथा विद्वानों द्वारा कीर्तन किया गया बाहुल्यतासे मिलता है वैसा श्री सिद्धसेन दिवाकरजीका नहीं मिलता इस लिये यह स्पष्ट सिद्ध है कि उनके पीछेसे कुछ एक विद्वान् उनकी महिमा गिने जानेपर भी उनके समान नहीं थे।

इसका हेतु यही है कि स्वामीजी उत्सर्पणीकालकी भविष्य चौवीसीमें भरत-क्षेत्रके तीर्थंकर होनेवाले है। जो प्राणी थोडी समयमें तीर्थंकर होनेवाला है उसका माहात्म्य तथा उसकी विद्वत्ता अपूर्वही हो तो इसमें आश्चर्य भी किस बातका। स्वामीजी भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले है इस विषयमें उभयभाषा कवि चक्रवर्ति श्री हस्तिमल्लिजी इस प्रकार लिखते है।

श्री मूलसङ्घयोमे दुर्मारने भावि तीर्थकृत्।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्नीयात् पदाङ्कित ॥

इस पदसे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि आप मूलसंघके आचार्य थे। सेन संघका जो आपको विद्वान् लोग लिखते है उसका हेतु यही है कि सेनसंघ मूल

संघके चार भेदोंमेंसे एक भेद है। स्वामीजी उरगपुरके राजाके पुत्र थे और जन्मका खास नाम उनका शान्तिवर्मा था समन्तभद्र शायद इस नामका विशेषरूपसे नाम हो, अथवा दीक्षाके बादमें समन्तभद्र नाम रखा गया हो। जो कि स्वामीजीके बोध करानेमें अभी यही प्रसिद्ध है।

ग्रथलेखन शैली

आप्तमीमासा तथा रत्नकण्डश्रावकाचारके देखनेसे मालूम पड़ता है कि आपकी ग्रथलेखन शैली समुद्रको घड़ेमें भरनेकी कहावतको वास्तविक चरितार्थ करती है। उसी शैलीपर बृहत्स्वयभूस्तोत्र, चतुर्विंशतिस्तव, युक्त्यानुशासन आदि ग्रथ भी हैं।

विषय पाडित्य

दर्शन, सिद्धान्त, साहित्य, व्याकरण, आदि सभी विषयमें आपका अपूर्व पाडित्य था क्योंकि दर्शन विषयके पाडित्यमें आपका आप्तमीमासा ग्रथ प्रसिद्ध ही है। सिद्धान्तमें जय धवला, तथा साहित्यमें चतुर्विंशतिस्तव है इस ग्रथमें एकाक्षरी बम्परी चित्रबन्धता आदि साहित्य कला द्वारा साहित्य विषयके पाडित्यकी हद्दरूप अद्भुत तथा अनोखी छटाको प्रदर्शित किया है। तथा व्याकरणमें भी समन्तभद्र नामका आपका किया हुआ व्याकरण है। जिसका कि उल्लेख पूज्यपाद स्वामीजीने प्रमाणभूततासे किया है।

सक्षेपमें हमें यही कहना है कि आपकी सब विषयहीम अप्रतिहत शक्ति थी क्योंकि इनके ये सर्व ग्रथ देखनेसे यह बात सहजही से समझमें आजाती है। तथा इस विषयमें विशेषतासे उसी समय पता लगेगा जब कि आपका ग्रथराज गधहस्त महाभाष्य जब कभी कहीं मिले।

आपमें भगवत विषयक स्तुति परायणता तथा शासनत्व है वह यद्यपि युक्तिमार्गकी प्रधानतासे है तथापि उसमें सर्वज्ञ मार्गका पूर्ण अनुगामीपन है।

शास्त्रकारोंने जो परीक्षा प्रधानताका वर्णन किया है वह भक्ति प्रधानताके साथ शक्तिकी पूर्णताम ही कीया है। जिस जगह यह कारण सामग्री सामग्रीपर है उस जगह स्वामी समन्तभद्रके समान स्तुतिके साथ स्वपरहितपना है। अन्यथामें सिर्फ आकाशके फूलों की कल्पना है।

---

१ उरगपुरसे शायद नागपुर लिया गया हो।

इनसब विषयोंसे पता चलता है कि स्वामीजीका पांडित्यमें हरएक विष
पूर्ण दक्षता थी।

श्रीमद् वादिराजसूरिने स्वामीके खास २ ग्रंथ विषयक चमत्कृतिरूप पा
रूपमें कितनी उत्कृष्टि भक्तिके साथ कितनाही मनोज्ञ स्तुतिगान किया है

स्वामिनश्चरितं तस्य कस्य नो विस्मयावहम्।
देवागमेन सर्वज्ञो यनाद्यापि प्रदर्श्यते ॥ १ ॥
अचिंत्यमहिमादेव सोऽभिवंद्यो हितैषिणा।
शब्दाश्च येन सिद्ध्यंति साधुत्व प्रतिलंभिता ॥ २ ॥
त्यागी स एव योगींद्रो यनाक्षय्यसुखावहः।
अर्तिनः भव्यसार्थाय दिष्टो रत्नकरण्डक ॥ ३ ॥
(पार्श्वचरित्र प्रथमसर्ग)

इन तीनों श्लोकोंमें देवागम -आप्तमीमांसा, स्वयंभूस्तोत्र, युक्त्यनुशासन आप्त, विषयक इन तीनग्रंथों द्वारा जो स्वामीजीका विशेष महत्व वर्णन किया गया है वह इन तीनों ग्रंथोंकी विशेष उत्कृष्टतासे ही है। क्योंकि स्वामीके ये ग्रंथ रत्न ऐसे ही हैं।

समय

समय निर्णयमें बहुतसे विद्वानोंका मत है कि स्वामीजीने पहली या दूसरी विक्रम शताब्दिमें अपने चरणरजसे इस भारत वसुंधराको पवित्रित किया था। विद्याभूषणादि अनेक पद धारक शतीश्वरचीन उमास्वामीजीको इसकी प्रथम शताब्दिका निर्णय किया है।

स्वामी समन्तभद्राचार्यचीन उमास्वामिकृत तत्वार्थमोक्षशास्त्र सूत्रपर गंधहस्त महाभाष्य नामकी एक विस्तृत टीका लिखी जिसका कि अनुष्टुप श्लोक प्रमाण चौरासी ८४००० हजार संख्यासे प्रख्यात है। यह टीका इस समय भाग्य दोषसे उपलब्ध नहीं है तथापि यह ग्रंथ अवश्य था और इसके प्रणेता स्वामीजी थे। इस विषयमें जिनका विपरीत विचार है व वास्तवमें हवाई महल चिननेके समान विपरीत मार्गपर है। इस विषयका निर्णय पाठक इस भूमिकाके ग्रंथ परिचय विषयसे करें।

चतुष्टय समन्तभद्रस्य इस व्याकरण जैनेन्द्रसूत्र द्वारा भगवान् स्वामी समन्तभद्रका नामोल्लेख श्री पूज्यपाद स्वामीजीने किया है। स्वामी पूज्यादजीका भाषा निरुक्त चरितसे शकाब्द साढ़े पांच सौ मिलता है। इस

परसे यह निर्णय हो जाता है कि या तो ये पहली शताब्दिके विद्वान् हैं या उसके पीछेके परंतु कुछ एक विद्वानोंने विक्रमकी १२५ वीं शताब्दिमें आपका होना निश्चित किया है इस परसे भी आपका पहली या दूसरी शताब्दिसे बाह्य समय नहीं जाता किंतु यहां समय आजाता है। विशेष निर्णय अवकाश मिलने पर हम फिर कभी करेंगे—अन्यविद्वान् भी करें तो जैनायइतिहासमें विशेष सुभीता हो।

५ जयचंद्रजी छावडा।

विक्रम १९०० की शताब्दिमें मारवर ५ टोडर मलजीके समान खंडेलवाल कुलभूषण पंडित जयचंद्रजी छावडा एक उत्तम प्रतिभाशाली विद्वान् हो गये हैं। उन्होंने अष्टसहस्री वगैर के आधारसे इस आप्तमीमांसाकी जो न्यायभाषा की है वह बहुतही मनोज्ञ है वह न्यायचञ्चु प्रवेशी देशभाषा जानकारोंको भी बहुत उपयोगी है। इसी तरह आपने न्याय अध्यात्मस्वरूप अन्यग्रंथोंपर भी विशेष रूपसे टीकायें लिखी हैं जिसका कि वारंवार विवरण हम प्रमेयरत्नमालाका भूमिकामें लिख चुके हैं जो कि इस ग्रंथके साथही साथ इस ग्रंथमालासे प्रकाशित हो चुकी है। उक्त पंडितजी साहबने जो सर्वार्थसिद्धि–प्रमेयरत्नमाला वगैर की जो टीकायें तथा पुष्टकर वीनतियों वगैर की रचनायें की हैं उससे साफ जाहिर होता है कि पंडितजीका पांडित्य बहुतही देश समयानुकूल था। तथा वर्तमान भविष्यमें भी उसी प्रकार उपयोगिता रूपसे परिणत रहेगा। इन ग्रंथोंके देखनेसे पता लगता है कि पंडितजीने अनेक ग्रंथोंका स्वाध्याय व मनन किया था इसीसे आपमें विशेष ज्ञान विकासकी विशेष छटा थी। पंडितजीने किन २ ग्रंथोंका विशेष रूपसे अध्ययन किया है इसका ब्यौरा उन्होंने खुद अपने सर्वार्थसिद्धि देशवचनिका प्रथमें किया है। उससे पाठकगण खुद निर्णय कर सकते हैं तथा उपयोगिता होनेसे सावकाश मिलनेपर हम फिर कभी लिखेंगे।

पंडितजी दुढाहर देश जयपुर नगरके रहनेवाले थे। आपने इस ग्रंथकी टीका समाप्ति विक्रमसम्वत १८६६ चैत्र कृष्ण १४ के दिन की है।

आपके विषयका विशेष विवरण प्रमेयरत्नमालाकी भूमिकामें हम लिख चुके हैं तथा सुभीता मिलनेपर सामिग्रीके मुआफिक अष्टपाहुड वगैर की भूमिकामें भी लिखेंगे॥

ग्रंथपरिचय ।

यह आप्तमीमांसा (देवागम) नामका ग्रंथ अनुष्टुप श्लोक संख्याम ११४ प्रमाण मात्र है परंतु आशयमें यह जलाशय (समुद्र) की उपमाको लिये हुए है । यद्यपि यह ग्रंथ भगवत् स्तुतिरूप है तथापि भगवत स्वरूपके ज्ञान विशेषमें साक्षात् एक अपूर्वही सिद्ध शक्ती है जिसके द्वारा कि भाग्यशाली पुरुषकी ईश्वराय ज्ञानविषयक आकांक्षा पूर्णरूपमें पूर्ण हो जाती है । तथा विज्ञानकलाम इससे पूर्णिमाके पूर्णचंद्रकी शक्ति जागृत होती है इस ग्रंथकी पुष्टि अष्टशती तथा अष्टसहस्री टीकाओंका पठन यह सहज रूपसेही समझमें आ जाता है कि यह ग्रंथ स्तुतिरूप होकर भी दर्शन विषयका एक खासे स्वरूप प्रधान अंग है क्योंकि इसमें मतांतर निराकरण(ताओं)के साथ असलीयत तत्वकी खूबी उस खूबीके साथ वर्णन की गई है कि जिसकी सादृश्यता शायदही कहीं हो । विषय प्रधानतासे यह ग्रंथ दश परिच्छेदोंमें विभक्त है । जिसका कि परिचय ब्यौरे वार विषय सूचीमें है । हमने पाठकोंकि सुभीतेके लिये इस सरल भूमिकाके साथ श्लोक सूची तथा विषय सूची भी लगा दी है । जो कि उपयोगितामें विशेष अवलंबन है ।

उपरोक्त मर्मोंमें स्वामीजीका यह मंथ कुछ विशेषही महत्व तथा चमत्कृतिको लिये हुए है इसका मुख्य कारण यह है कि तत्वार्थ सूत्र सरीखे महत्वपूर्ण ग्रंथकी टीका जो गंधहस्ति नामकी ८४००० अनुष्टुप श्लोकप्रमाणमें रची गई है वह बहुतही महत्वपूर्ण होगी और उसीका यह मंगलाचरण है । महत्व शाली ग्रंथका मंगलाचरणभी स्वामी सरीखे ग्रंथकर्ताओंद्वारा महत्वसे कुछ विशेषता लिये अवश्य ही होता है। क्योंकि लोकमें भी कहावत है कि क्षीरसमुद्रका अमृतो त्पत्तिरूप सारता चतुर देवों ही द्वारा प्रदर्शित की गई । यद्यपि भाग्यकी खूबीसे ग्रंथराज गंधहस्तिमहाभाष्य इस समय हम लोगोंके दरसनमें नहीं आताहै तथापि परंपरा श्रुतिसे तथा अनेक अकाट्य प्रमाणोंसे यह सिद्ध है कि स्वामीजीने गंध हस्ति महाभाष्यकी रचना की और यह ग्रंथ गंधहस्तिमहाभाष्यका मंगलाचरण है इस विषयमें श्री विद्यानंदजी महाराज अपनी अष्टसहस्रीके मंगलाचरणमें इस प्रकार लिखते हैं ।

शास्त्रावतारररचितस्तुतिगोचरात—
मीमांसिते स्तुतिरलंक्रियते मयास्य ॥

इस अद्ध पद्यसे स्पष्ट सिद्ध है कि किसी शास्त्रकी उत्पत्तिकी आदिमें यह ग्रथ स्तुति स्वरूप मगलाचरण है। अब किस ग्रथका यह मगलाचरण है इस विषयका प्रमाण श्री धर्म भूषणजी यति महाराजका न्यायदीपिकाम स्पष्टरूपसे भलीभानि मिलता है—

'तदुक्त स्वामिभिर्महाभाष्यस्यादावाप्तमीमासा प्रस्तावे सूक्ष्मातरे' त्यादि वह महाभाष्य कौन है तथा किस ग्रथका वह महाभाष्य है इस विषयमें उभय भाषाकवि चक्रवर्ति श्री हस्तिमल्लिजीका विख्यात कौरवीय नाटककी प्रशस्ति इस प्रकार सूचित करती है

तत्वार्थसूत्र व्याख्यानगन्धहस्तिप्रवर्तक
स्वामी समन्तभद्रोभूद्देवागमनिदेशक ॥

सौ वर्ष पहलेके विद्वान् जयचद्रजी साहबने भी इसी ग्रथकी आदिमें सवैया-छदद्वारा यही सूचित किया है। इन सब प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध होजाता है कि स्वामीजीने तत्वार्थसूत्रके ऊपर जो टीका गधहस्ति नामकी रची है उसका यह ग्रथ मगलाचरण है। इस ग्रथका असली महत्व तो अकलक विद्यानदी वसुनदी आदि आचार्योंने समझा है। हम जो कुछ समझ सकते हैं तथा समझे हैं वह पूज्य इन आचार्योंके अष्टशती अष्टसहस्री आदि टीका ग्रथोंका ही प्रताप है। और इस विषयमें प जयचद्रजी छावड़ा भी देशभाषा जानकारोंके लिये विशेष उपकर्ता हैं।

विनीत—
रामप्रसाद जैन,
बम्बई ॥

श्लोकसूची ।



न	श्लोक	पृष्ठ
१	देवागमनभोयानचामरादिविभूतय ।	४
	मायाविष्वपि दृश्यन्ते नातस्त्वमसि नो महान् ॥	
२	अध्यात्म बहिरप्येष विग्रहादिमहोदय ।	८
	दिव्य सत्यो दिवौकस्वप्यस्ति रागादिमत्सु स ॥	
३	तीर्थकृत्समयाना च परस्परविरोधत ।	१
	सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवद्गुरु ॥	
४	दोषावरणयोर्हानिर्निं शेषास्त्यतिशायिनात् ।	११
	क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्या बहिरन्तर्मलक्षय ॥	
५	सूक्ष्मान्तरितदूरार्था प्रत्यक्षा कस्यचिद्यथा ।	१३
	अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थिति ॥	
६	त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।	१४
	अविरोधो यदिष्ट ते प्रसिद्धन न बाध्यत ॥	
७	त्वन्मतामृतबाह्यानां सर्वथैकान्तवादिनाम् ।	१५
	आप्ताभिमानदग्धानां स्वेष्ट दृष्टेन बाध्यते ॥	
८	कुशलाकुशलकर्म परलोकश्च न क्वचित् ।	१६
	एकान्तग्रहरक्तेषु नाथ स्वपरवैरिषु ॥	
९	भावैकान्ते पदार्थानामभावानामपह्नवात् ।	१७
	सर्वात्मकमनाद्यन्तमस्वरूपमतावकम् ॥	
१०	कार्यद्रव्यमनादिस्यात् प्रागभावस्य निह्नवे ।	१८
	प्रध्वंसस्य च धर्मस्य प्रत्यवेऽनन्तता भवेत् ॥	
११	सर्वात्मक तदेव स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे ।	१९
	अन्यत्र समवायेन व्यपदिश्येत सर्वथा ॥	
१२	अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापह्नववादिनो ।	२०

क्र	श्लोक	पृष्ठ
	बोधवाक्य प्रमाण न केन साधनदूषणम् ॥	
१३	विरोधानोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	२१
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिनावाच्यमिति युज्यते ॥	
१४	कथचित्ते सदेवेष्ट कथचिदसदेव तत् ।	२२
	तथोभयमवाच्य च नययोगान्न सर्वथा ॥	
१५	सदेव सर्वं को नेच्छेत् स्वरूपादि चतुष्टयात् ।	२४
	असदेव विपर्यासान्न चान्न व्यवतिष्ठते ॥	
१६	क्रमार्पितद्वयाद्वैत सहावाच्यमशक्तित ।	२५
	अवक्तव्योत्तरा शेषाश्चयो भगा स्वहेतुत ॥	
१७	अस्तित्व प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।	२६
	विशेषणत्वात्साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥	
१८	नास्तित्व प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मणि ।	२७
	विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥	
१९	विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्य शब्दगोचर ।	२८
	साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥	
२०	शेषभगाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगत ।	२९
	न च कश्चिद्विरोधोस्ति मुनीन्द्र ? तव शासने ॥	
२१	एव विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत् ।	३०
	नेति चेन्न यथास्वार्थं बहिरन्तरुपाधिभि ॥	
२१	धर्मे धर्मेऽन्य एवार्थो धर्मिणोऽनतधर्मण ।	३१
	अस्तित्वेऽन्यतमान्तस्य शेषान्ताना तदङ्गता ॥	
२३	एकानेक विकल्पादावुत्तरत्रापि योजयेत् ।	३१
	प्रक्रिया भगिनीमेना नयैनयविशारद ॥	
२४	अद्वैतैकान्तपक्षेऽपि दृष्टो भेदो विरुध्यते ।	३३
	कारकाणां क्रियायाश्च नैव स्वस्मात्प्रजायते ॥	
२५	कमद्वैत फलद्वैत लोकद्वैत च नो भवेत ।	
	विद्याविद्याद्वय न स्याद्बधमोक्षद्वय तथा ॥	
२६	हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैत	

न	श्लोक	पृष्ठ
	हेतुना चद्विना सिद्धिर्द्वैत वाङ्मात्रता न किम् ॥	
२७	अद्वैत न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना ।	३५
	साक्षिन प्रतिषेधो न प्रतिषेध्यादृते क्वचित् ॥	
२८	पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्तु तौ ।	३७
	पृथक्त न पृथक्त स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुण ॥	
२९	सतान समुदायश्च साधर्म्य च निरङ्कुश ।	३९
	प्रेत्यभाव-च तत्सर्व न स्यादेकत्वनिह्नव ॥	
३०	सदात्मना च भिन्न चेज्ज्ञान ज्ञेयाद द्विधाप्यसत् ।	३९
	ज्ञानाभावे कथ ज्ञेय बहिरन्तश्च त द्विधाम् ॥	
३१	सामन्याया गिरोन्येषा विशेषो नाभिलप्यते ।	४०
	सामान्याभावतस्तेषा मूर्खैव सकला गिर ॥	
३२	विरोधानोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	४१
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिनावाच्यमिति युज्यत ॥	
३३	अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तुद्वयहेतुते ।	४१
	तदैक्यस्य पृथक्त्व च स्वभेदै साधन यथा ॥	
३४	सत्सामान्यात्तु सर्वैक्य पृथग्द्रव्यादिभेदत ।	४२
	भेदाभेदाव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत् ॥	
३५	विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनन्तधर्मिणि ।	४२
	यतो विशेषणस्यात्र नासत्त्वैस्तदर्थिभि ।	
३६	प्रमाणगोचरौ सन्तौ भेदाभेदौ न संवृती ।	
	तावकाविमतौ तेऽयुक्तिनावाच्यमिति स्तुवत ॥	
३७	नियतैकान्तपक्षेऽपि विक्रियानोपपद्यते ।	४६
	प्रागेव कारकाभाव च प्रमाणं च तत्फलम् ॥	
३८	प्रमाणकारकैर्व्यक्त व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत् ।	४७
	ते च नित्ये विधायेह किं साधास्ते शासनाद्वहि ॥	
३९	यदि सत्सर्वथा कार्यं पुवन्नोत्पत्तुमर्हति ।	४८
	परिणामप्रक्लप्तिश्च नित्यैकान्तेषु बाधिनी ॥	
४०	पुण्यपापक्रिया न स्यात्प्रेत्यभावफलै कुत ।	४९
	बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायक ॥	



नम सिद्धेभ्य ।

श्रीसमन्तभद्राचार्य विरचित

आप्त-मीमांसा ।

देवागमापरनाम ।

पं० जयचन्दजी विरचित हिन्दीटीकासहित ।

अथ देवागमनाम स्तवकी देशभाषामयवचनिका लिखिये है ।

दोहा ।

वृषभ आदि चउवीस जिन, वर्द्धो शीस नवाय ।
विघनहरन मगलकरन, मन वाछित फलदाय ॥ १ ॥
सकलतत्वपरकास कर, स्यादवादमयसार ।
शब्द ब्रह्म साचे नमौं, जनवचन हितकार ॥ २ ॥
वृषभसेनकू आदि ले, अतिम गौतमस्वामि ।
चउदहसै श्रेपन नमौं, गणधर मुनिवर नामि ॥ ३ ॥

पंचमकालमुआदिमैं, केवलज्ञानी तीन ।
श्रुतकेवली हू पंच जे, नमा कर्ममल छीन ॥ ४ ॥
तत्वारथशास्त्र कियो, उमास्वामि मुनि ईश ।
सदा तासके चरन युग, नमा धारि कर शीस ॥ ५ ॥

संबंधा २१ सा ।

स्वामि जो समंतभद्र तत्वारथशास्त्रकी महाभाष्य रची ताकी आदिमैं विचारे । परम आप्त मीमासा देवागमनाम स्तुति स्याद वादसाधनमैं भावी विस्तारे । अष्टशती वृत्ति ताकी कीनी अकलंकदेव ताकू विद्यानंदसूरि भले मन धारिकै । अलंकारूप वरणी हजार आठ ऐसे तीन मुनिराय पाय नमा मद टारिकै ॥ ६ ॥

दोहा ।

आगमकी उत्पत्तिको, कारन आप्तविचार ।
ताहीतैं है ज्ञानवर, नमनै योग्यनिहार ॥ ७ ॥
क्रियो नमन अब करतहू, देवागम श्रुति देपि ।
देशवचनिका तासकी, टीका आशय पेपि ॥ ८ ॥

ऐसैं मंगलके अर्थि इष्टकू नमस्कार किया । अब शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका ज्ञान आप्तैं ही होय यातैं शास्त्रके मूलकर्ता तौ परमभट्टारक श्रीऋषभदेव आदि वर्द्धमानपर्यंत चउवीस तीर्थंकर चतुर्थकालमैं भये । अर तिनकी दिव्यध्वनितैं ज्ञेय गणधरीनैं द्वादशांग श्रुतरूप रचना करी तिनका परिपाटी अनुसार इस पंचमकालमैं भये तिननैं शास्त्रोंकी प्रवृत्ति करी ऐसैं शास्त्रनिकी उत्पत्ति तथा शास्त्रनिके ज्ञानके कारण आप्त ही हैं । ता शास्त्रका आदिविषैं नमस्कार जोग्य है । ऐसैं जानि तिनकू नमस्कारकरि देवागमनाम स्तोत्रकी देशभाषामयवचनिका लिखू हू । ताका संबंध ऐसा—जो प्रथम तौ उमास्वामिमुनिननैं तत्वार्थसूत्र दशाध्यायरूप रच्या ताकौ गंधहस्तिनामा महाभाष्य श्रीस्वामिसमंतभद्रनैं रची, ताकी आदिमैं आप्तकी परीक्षारूप

यह देवागमनामा स्तवन किया, सो याका देवागम ऐसा तौ आदि अक्षरके सम्बधतैं नाम है । अर याका सार्थक नाम आप्तमीमांसा है । मीमांसा परीक्षाकू कहिए है । बहुरि इस स्तवनकी अकलंकदेव आचार्यनैं वृत्ति करी ताके श्लोक आठसै हैं, ताकू अष्टशती ऐसा नाम कहिये है । बहुरि तिस अष्टशतीका अर्थ लेय श्रीविद्यानन्दिनाम आचार्यनैं अष्टसहस्रीनामा याकी अलंकाररूप टीका रची है । सो यह ग्रंथ न्यायपद्धतिका है । इसका अर्थ व्याकरण न्यायशास्त्रके पढेनिकू भासै है सो ऐसै पढनेवाले तथा इनका गुरु-आम्नायकी विरलता हो गई है ताकरि अर्थके समझनेवाले विरले है । मेरे कछु इनका बुद्धि सार बोध भया तब विचार भया जो सम्यग्दर्शनका प्रधानकारण आप्त, आगम, पदार्थका जानना है अर आप्तकी परीक्षा इस ग्रंथनिमैं है । सो आप्तका यथार्थ स्वरूप इस ग्रंथनितैं प्रकट होय तौ बडा उपकार होय, अल्पबुद्धि हू आप्तका स्वरूप यथार्थ समझै तो ताके वचन आगम है, तथा तिस आगममैं पदार्थका स्वरूप वर्णन है ताकू समझैं सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय ऐसैं विचारि या स्तवनकी देशभाषामय वचनिका संक्षेप अर्थरूप अष्टसहस्री टीकाका आशय लेय कछु लिखू हू सो भव्य जीव बाचियो, पढियो, धारियो, यातैं आप्तका यथार्थ स्वरूप जानि श्रद्धान दृढ कीजियो । अर अर्थमैं कहू हीनाधिक लिखू तो विशेष बुद्धिवान् मूल श्लोक तथा टीका देखि शुद्धकरि बाचियो, मेरी अल्पबुद्धि जानि हास्य मति करियो । सत्पुरुषनिका स्वभाव गुणग्रहण करणेका होय है । सो दोष देखि क्षमा ही करै ऐसैं मेरी परोक्ष प्रार्थना है । इस देवागम स्तोत्रकी पीठका ऐसैं है—

यामैं परिच्छेद दश हैं । तिनमे आदिका प्रथम परिच्छेदमैं कारिका (श्लोक) तेईस हैं । तिनमैं आदिमैं देवागम इत्यादि तीन श्लोकमैं

तौ भगवान् महान् स्तुतियाग्य एसैं हेतुनितैं नाहीं है ऐसैं कह्या है। बहुरि दोषावरण इत्यादि दोय श्लोकनिमैं भगवान् सर्वज्ञ वीतराग है ऐसा अनुमान किया है। बहुरि स त्वमेवासि इत्यादि एक श्लोकमैं ऐसैं सर्वज्ञ वीतराग तुम अरहंत ही हो एसैं कह्या है। बहुरि त्वन्मता इत्यादि दोय श्लोकमैं अन्य आप्त नाहीं हैं ऐसा कह्या है। ऐसैं आठ श्लोकमैं तो पीठबंध है। बहुरि आगैं भावाभावपक्षका एकांतके निषेधका पाच श्लोक है। तामैं भाव १, अभाव २ अर भावाभाव ३, अवक्तव्य ४, भावावक्तव्य ५, अभावावक्तव्य ६, भावाभावावक्तव्य ७, ऐसैं विधि-निषेधके सात भंगकरि दूषण दिखाया है। बहुरि आगैं नव श्लोकनिमैं भावाभावकी सातू पक्षका अनेकांत रूप स्थापन है। बहुरि एक श्लोकमैं अगले परि छदनिमैं इनि पक्षनिके सप्तभंग करनेकी सूचनिका है। ऐसैं प्रथम परिच्छेद समाप्त किया है ॥ १ ॥

आगैं द्वितीय परिच्छेदमैं एकत्वानेकत्व पक्षका तेरा श्लोकनिमैं वर्णन है। तहाँ चार श्लोकनिमैं अद्वैत पक्षके एकांतका निषेध है। बहुरि चारि श्लोकनिमैं प्रथक्त्व एकांत पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउ पक्ष अर अवक्तव्यपक्षका निषेध है। बहुरि चार श्लोक-निमैं इनि पक्षनिके अनेकांतकरि स्थापन है। ऐसैं द्वितीय परिच्छद समाप्त किया है ॥ २ ॥

आगैं तृतीय परिच्छेद नित्यानित्य पक्षका है तामैं श्लोक चौईस है। तहा चार श्लोकनिमैं तौ नित्यत्व एकांत पक्षका निषेध है। बहुरि चौदह श्लोकनिमैं क्षणिक एकांत पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउका पक्ष अर अवक्तव्य पक्षका निषेध है। बहुरि पाच श्लोकनिमैं अनेकांतकरि इन पक्षनिका स्थापन है। ऐसैं तृतीय परि-
 समाप्त किया है ॥ ३ ॥

आगैं चतुर्थ परिच्छेद भेदाभेद पक्षका है। तामैं श्लोक बारह हैं। तिनमैं छह श्लोकनिमैं तौ भेद एकान्त पक्षका निषेध है। बहुरि तीन श्लोकनिमैं अभेद पक्षका निषेध है। बहुरि एक श्लोकमैं दोउकी पक्ष अर अवक्तव्य पक्षका निषेध है। बहुरि दोय श्लोकनिमैं अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं चतुर्थ परिच्छेद समाप्त किया है ॥४॥

आगैं अपेक्षा-अनपेक्षाकी पक्षका पचम परिच्छेद है तामैं तीन श्लोकनिमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं पाचमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ५ ॥

आगैं हेतु आगमकी पक्षका छठा परिच्छेद है तामैं तीन श्लोक हैं। तिनमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं छठा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ६ ॥

आगैं अतरग बहिरग तत्वकी पक्षका सातमा परिच्छेद है। तामैं नव श्लोक हैं। तहा च्यारि श्लोकनिमै तौ एकान्तका निषेध है। अर पाच श्लोकनिमैं अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं सातमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ७ ॥

आगैं दैव पौरुष की पक्षका आठमा परिच्छेद है तामैं श्लोक च्यारिमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं आठमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ८ ॥

आगैं पुण्य पापके बधकी रीतिका नवमा परिच्छेद है। तामैं श्लोक च्यारिमैं एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन है। ऐसैं नवमा परिच्छेद समाप्त किया है ॥ ९ ॥

आगैं दशमा परिच्छेदमैं उगणीस श्लोक हैं तिनमैं तीन श्लोकनिमैं तौ अज्ञानतैं बध अर अल्पज्ञानतैं मोक्ष ऐसा एकान्तका निषेध करि अर बध मोक्ष जैसैं होय तैसैं अनेकान्ततैं स्थापन किया है।

बहुरि दोय श्लोकनिमैं समारकी उत्पत्तिका क्रम कह्या है। बहुरि पाँछै दोय श्लोकनिमैं प्रमाणका स्वरूप, संख्या, विषय, फल इन चारनिका वर्णन करि अर दोय श्लोकनिमैं स्याद्पदका स्वरूप कह्या है। पाछै एक श्लोकमैं स्याद्वादकूं अर केवलज्ञानकूं कथंचित् समान दिखाया। पीछै नयका हेतुरूप स्वरूप एक श्लोकमैं कहि अर प्रमाणका विषय वस्तुका स्वरूप एक श्लोकमैं कह्या, पाछै एक श्लोकमैं याहीकूं दृढ़ किया, पीछै प्रमाणनयके वाक्यका स्वरूप चारि श्लोकमैं कह्या। पाछै एक श्लोकमैं स्याद्वादकी स्थिति कही। अर पीछै एक श्लोकमैं ग्रंथ करनेका प्रयोजन कहि उगणीस श्लोकरूप परिछेद समाप्त किया है। सर्व श्लोक एक सो चौदह भये ऐसैं दश परिच्छेद रूप पीठका है॥ १०॥

इति पीठिका।

अथ अष्टसहस्रीनाम टीकाका कर्त्ता श्रीविद्यानंदिनामा आचार्य कहै है—जो यह देवागमनामा शास्त्र है सो कैसा है? शास्त्रका प्रारम्भ कालविषै रची जो स्तुति ताका गोचर जो आप्त ताकैं गुणनिका अतिशयकी परीक्षा स्वरूप है। सो ऐसै मोक्षशास्त्र जो तत्त्वार्थसूत्र ताकी आदिविषै शास्त्रकी उत्पत्ति तथा शास्त्रका ज्ञानका कारणपणाकरि तथा मंगलकैं अर्थि मुनिननैं भगवान आप्तका स्तवन ऐसैं किया—

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये॥ १॥

याका अर्थ—मोक्षमार्गके प्राप्त करनेवाले कर्मरूपपर्वतके भेदनेवाले समस्त तत्त्वके जाननेवाले ऐसे आप्तको मैं तिनके गुणनिकी प्राप्तिके अर्थि वंदौं हूं। ऐसे अतिशयरहित गुणनिकरि स्तवन कियाँ [illegible] आप्त मानूं समंतभद्राचार्यकूं साक्षात पूछ्या जो हे स्वामं

तभद्र ! यह मुनिननैं हमारा स्तवन निरतिशय गुणनिकरि किया सो हमारे देवनिका आगम आदि विभूति पाइये है, ऐसे अतिशयनिकरि हम महान हैं--स्तवन करने जोग्य है । ऐसे अतिशयसहित गुणनिकरि हमारा स्तवन क्यों न किया । ऐसे पूछैं तैं समतभद्राचार्य भगवानकू कहै है— कैसे हैं समतभद्राचार्य ? मोक्षका मार्गस्वरूप जो अपना हित ताकू चाहते जे भव्यजीव तिनकै सम्यक् अर मिथ्या जो उपदेशका विशेष ताका ज्ञानके अर्थि आप्तकी परीक्षाकू करते हैं । बहुरि कैसे हैं ? श्रद्धा अर गुणज्ञता इन दोऊनतैं प्रयुक्त है मन जाका ऐसे है। ऐसैं उत्प्रेक्षा अलंकाररूप वचन है । ऐसे भगवान आप्तके साक्षात् पूछै मानू समतभद्राचार्य्य कहैं हैं—

देवागमनभोयानचामरादिविभूतय. ।
मायाविष्वपि दृश्यते नातस्त्वमसि नो महान् ॥ १ ॥

अर्थ—हे भगवन्! तुमारे देवनिका आगमन आदि तथा आकाशविषैं गमन आदि तथा चामरछत्रादि विभूति पाइये हैं इस हेतुतैं तो हमारे मुनिनकै तुम महान् स्तुति करनें योग्य नाहीं हो, जातैं यह विभूति तो मायावी जे मस्करी आदिक इन्द्रजालवाले तिनविषैं भी पाइये है । यातैं जो आज्ञा प्रधानी हैं ते देवनिका आगम आदि विभूति अपना परमेष्टी परमात्माका चिह्न मानू अर हम सारखे परीक्षा प्रधानी तौ ऐसे चिह्नतैं परमेष्टी स्तुति करनें योग्य नाहीं मानैं हैं । जातैं यह स्तव आगमके आश्रय है । बहुरि या स्तवनका हेतु देवनिका आगमादि विभूतिसहितपणा है सो यह हेतु भी आगम आश्रित है । प्रतिवादीके तो प्रमाणसिद्ध ही नाहीं है, पेला साक्षात् देवागमादि देख्या बिना कैसैं मानैं । अर आगमप्रमाणवादीकै भी मायावी आदि विपक्षमैं वर्तनेतैं व्यभिचारी है । साध्यकू कैसे साधै । बहुरि आगम

प्रमाणवादी कहै—जो साँचा देवाधिका आगमआदि विभूतिसहितपणां भगवानकै है ते मायावीनिविषै नाहीं तातैं हेतु व्यभिचारी नाहीं, तौ तहा भी ऐसा उत्तर जो साँचे विभूति भगवानकै प्रत्यक्ष अनुमान तैं सिद्ध भये नाहीं अर आगमतैं सिद्ध किये मानै तो आगमाश्रित ही भया तातैं इस हेतुतैं स्तुति करनें योग्य भगवान आप्त सिद्ध होय नाहीं ॥ १ ॥

आगैं फेरि मानु भगवान पूछै है—जो अंतरंग अर बाह्य शरीरादि महोदय हमारे हैं तैसा अन्यकै नाहीं, साचा है यातैं हम महान स्तुति करनें योग्य है तातैं तैसैं स्तवन क्यों न किया, ऐसैं पूछैं मानू फेरि आचार्य कहै हैं—

अध्यात्मं बहिरप्येष विग्रहादिमहोदय ।
दिव्य सत्यो दिवौकस्वप्यस्ति रागादिमत्सु स ॥ २ ॥

अर्थ—अध्यात्म कहिए आत्माश्रित शरीराश्रित अंतरंग शरीर आदिका महान् उदय मल पशेव रहितपणा आदिक, बहुरि बाह्य देवनिकरि किया गंधोदकवृष्टि आदिक ये साच मायावीनिविषै नाहीं पाइये, बहुरि दिव्य है चक्रवर्त्यादिक मनुष्यनिक ऐसे न पाइये। सो ऐसे हेतुतैं भी भगवान आप्त तुम हमारे स्तुति करनें योग्य नाहीं हो जातैं यद्द अंतरंग बहिरंग साचा महोदय यद्यपि पुरणादिक इन्द्रजालीनिविषै न पाइये है तोऊ कषाय रागादिकसहित स्वर्गके [illegible] है तातैं हेतु व्यभिचारी है। इस हेतुतैं भी [illegible] नाहीं स्तुतिगोचर कीजिए है। इहाँ भी [illegible] मैंके नातैं जैसा विग्रहादिमहादय [illegible] निषैं नाहीं है ? तहाँ भी पूर्वोक्त ही [illegible] ऐसैं साक्षात् दीखै [illegible]

आगमाश्रित ही है । इहां कहै—जो प्रमाणसप्लवके माननेंवाले अनेक प्रमाणतैं सिद्ध मानैं हैं । इहाँ आगम प्रमाणतैं सिद्ध भया सोई आगमाश्रित हेतुजनित अनुमानतैं सिद्ध भया यामैं दोष कहा ? ताकू कहिए—ऐसैं प्रमाणसप्लव इष्ट नाहीं है, प्रयोजन विशेष होय तहाँ प्रमाणसप्लव इष्ट है । पहलैं प्रमाण सिद्ध प्रामाण्य आगमतैं सिद्ध भया तौऊ ताका हेतुकू प्रत्यक्ष देखि अनुमानतैं सिद्ध करै पीछैं ताकू प्रत्यक्ष जाणै तहाँ प्रयोजन विशेष होय है ऐसैं प्रमाणसप्लव होय है । केवल आगमहीतैं तथा आगमाश्रित हेतुजनित अनुमानतैं प्रमाण कहि काहेकू प्रमाणसंप्लव कहना ऐसैं इस विग्रहादिक महोदयतैं भी भगवान परमात्मा नाहीं मानैं हैं ॥ २ ॥

आगै फेरि मानू भगवान् पूछै है जो हमारा तीर्थकृत सप्रदाय है—मोक्ष मार्गरूप धर्मतीर्थ हम चलावैं हैं इस हेतुतैं हम महान् स्तुति करनें योग्य हैं । ऐसैं पूछैं फेरि आचार्य्य साक्षात् ही कहै है ।—

तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधत: ।
सर्वेषामाप्तता नास्ति कश्चिदेव भवेद्गुरु ॥ ३ ॥

अर्थ—हे भगवन्! तीर्थ कहिये जाकरि तरिये ऐसा धर्ममार्ग ताकू करै ते तीर्थकृत् तिनके समय कहिये मत तथा आगम तिनके परस्पर विरोध है तातैं सर्वहीके आप्तपणा होइ नाहीं । तिनमैं कोई एक गुरु महान् स्तुति करनें योग्य होइ ।

भावार्थ—हे भगवन् आप्त! तुमारै तीर्थकरपणा हेतुतैं महान्पणा साधिये तौ यह तीर्थकरपणा प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणतैं तौ सिद्ध होइ नाहीं । प्रत्यक्ष दीखै नाहीं तथा ताका लिंग दीखै नाहीं । अर आगमतै साधिये तौ पूर्ववत् आगम आश्रय ठहरै । बहुरि यहु हेतु व्यभिचारी है तातैं इन्द्रादिकविषै असभवी है तौऊ बौद्धादि अन्यमती

है न सर्व अपनें अपनेंकू तीर्थंकर मानै हैं यातें सर्व ही महान् ठहरै हैं। बहुरि ते सर्वज्ञ हैं नाहीं जातैं परस्परविरुद्ध आगम कहै हैं। जो विरुद्ध न कहै तो तिनकै मतभेद काहेकू होइ। तातैं तीर्थंकरपणा हेतु है सो काहूहीक महानपणाकूं साधै नाहीं है।

इहां मीमांसकमती बोलै है—जो याहातैं ऐसा आया जो पुरुष तौ कोई भी सर्वज्ञ महान् स्तुति करव योग्य नाहीं जे कल्याणके अर्थि हैं तिनकै वेद हा कल्याणका उपदेशका साधन है? तातू भी ऐसैं हा कहना—जौ वेद आप ही तौ आपके अर्थकू कहै नाहीं। वेदका अर्थ पुरुष ही करै है। तिनकै भी परस्पर विरोध हा देखिये है। तहां भट्ट सम्प्रदायी तौ वेदका वाक्यार्थ भावनाकू माने है, प्रभाकरक सम्प्रदायी नियोगकूं वाक्यार्थ माने हैं, वेदान्तक सम्प्रदायी विधिकूं वाक्यार्थ माने हैं। तिनकै परस्पर विरोध है। इनका स्वरूप विद्यानंदिकरि अष्टसहस्रीमैं वर्णन है तथा विस्तारसूं दिखाया है तहातैं जानना।

बहुरि इहा नास्तिकवादी चार्वाक तथा शून्यवादी कहै है—जो कछू वस्तु ही सत्यार्थ नाहीं तब काहेका आप्त अर काहकू परीक्षाका विवादका प्रयास करिये? तातू कहिये—जो वस्तु नाहीं है ऐसा भी निश्चय कैसैं करिये, तू नास्तिक तथा शून्यका कहनेवाला किछु वस्तु ही नाहीं तौ तेरी कही कौन मानेगा अर तू वस्तु है तौ तैसैं ही सर्व वस्तु है। (तथा सर्व वस्तुका जाननेवाला सर्वज्ञ आप्त है।) तहां वस्तुका स्वरूप कोऊ कैसैं मानै है कोऊ कैसैं मानै है। तहां परीक्षा भी करी चाहिए। बहुरि परीक्षा होइ है सो प्रमाणरूप ज्ञानतैं होइ है। बहुरि प्रमाणरूप ज्ञान है सो सत्यार्थ साचा ज्ञान सर्वज्ञका है सो सर्वज्ञ अदृष्ट है निश्चय किया चाहिए। अर अन्यज्ञके निश्चय होइ, सो अपनें ज्ञानमैं होय सो साधक प्रमाण अर बाधकका जैसैं निश्चय

होइ, वादी प्रतिवादी निवधि निश्चय करै कोइ प्रकार बाधा नाही आवै तैसैं निश्चय करना सो परीक्षा है ।

बहुरि इहा मीमासक कहै—जो अल्पज्ञकी तो सिद्धि होइ है अर सर्वज्ञकी सिद्धि नाही। ताकू कहिए—जो अल्पज्ञ आत्माकी सिद्धि है तौ ताक निषेधकू इस श्लोकके चौथे पदका अर्थ ऐसैं करना जो "कश्चि देव भवेद्गुरु" कहिए कौन गुरु है ? यह चित् है—ज्ञान रूप आत्मा है सोई गुरु है—महान् है । जातैं इस चैतन्य आत्माके अन्य पुद्गलके सबधतैं ज्ञानावरण आदिक कर्म्म है तिनके आवरणतैं अप्रभुपणा अर दोषसहितपणा है । सो आवरण दूर भये आत्मा सर्वज्ञ वीतराग होइ है । यह प्रमाणतैं सिद्ध है । ऐसैं आप्त सर्वज्ञका निश्चय भये तिसके वचनरूप आगमका निश्चय होइ, आगमतैं सर्व वस्तुका निश्चय होइ । ऐसैं निश्चय करतै देवागमादि विभूतिसहितपणातै अर त्रिग्रहादिमहोदय-पणातैं अर तीर्थंकरपणातैं ता आप्त सर्वज्ञ सिद्ध न भया तातै भले प्रकार निश्चय भया है असभवता बाधकप्रमाण जामैं ऐसा भगवान अरहत तुम ही ससारी जीवनिका प्रभू हो स्वामी हो यातैं आत्यन्तिक दोष-निका अर आवरणकी हानिकरि अर समस्त तत्त्वार्थनिका ज्ञातापणाकरि सूत्रकारादि मुनिननैं तुमारा स्तवन किया है ॥ ३ ॥

ऐसैं आचार्य समतभद्रनैं निरूपण किया तब फेरि मानू भगवान साक्षात् पूछया जो अत्यत दोष अर आवरणकी हानि सो किसै कौन हेतुतैं निश्चय करी ? ऐसैं पूछै मानू फेरि आचार्य समतभद्र कहैं हैं—

दोषावरणयोर्हानिर्निःशेषास्त्यतिशायनात् ।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षयः ॥ ४ ॥

अर्थ—दोष अर आवरण की हानि सामान्य तौ प्रसिद्ध है । जातैं एकदेश हानितैं अल्पज्ञनिकै एकदेश निर्दोषपणा अर एकदेश

ज्ञानादिक तिस हानिके कार्य देखिये हैं यातैं निर्दोष आवरणकी हानि सपूर्ण काहूविषैं दरिये है—साधिये हैं। इहा अतिशायन ऐसा हेतु है याका अर्थ यहू जो यहू हानि वधता वधती देखिये हैं। जैसें क्वचित् कहिए कहू कनक पाषाणादिविषैं कीट कालिमा आदि बाह्य अभ्यंतर मलका अपणा हेतु जो ताव देतैं सर्वथा अभाव होय है तैसें अल्पनके तिनका नाशके हेतु जे सम्यग्दर्शनादिक तिनतैं सर्वथा दोष अर आवरणका अभाव होइ है ऐसा सिद्ध होइ है। इहा आवरण तो ज्ञानावरणादिक कर्म्मपुद्गलके परिणाम हैं अर दोष अज्ञानरागादिक जीवके परिणाम हैं। बहुरि इहा कोइ कहै—जैसें अतिशायन हेतुतैं दोष आवरणकी हानि संपूर्ण साधी। तैसें कहू बुद्धि आदिगुणकी भी हानि वधती वधती देखिये हैं सो यह भी कहू सपूर्ण सधै है? ताकू कहिए—बुद्धि आदिकी सपूर्ण हानि आत्मा विषैं साधिये है तो आत्माके जडपणा आवै सो यह बडा दोष आँय तातैं जीवपुद्गलका सम्बन्धरूप बधपर्य्यायमैं क्षयोपशम रूप बुद्धि है ताका अभाव होइ है सो आत्माका स्वाभाविक ज्ञानादिगुण तो सपूर्ण प्रकट होइ है अर बंध पर्य्यायका अभाव होइ पुद्गल कर्मजडरूप भिन्न होय जाय है तैसें पुद्गलकै बुद्धि आदि गुणका अभावका व्यवहार है। एसें वीतराग सर्वज्ञ पुरुष अनुमानतैं सिद्ध होय है ॥ ४ ॥

आगैं मीमांसकमती कहैं हैं—जो जीव है सो भावकर्म अज्ञानादिकतैं रहित भया होय तौऊ सूक्ष्मादि पदार्थ समस्तकू तो नाही जानै। अथवा अन्य पदार्थनिकू सर्वकू जानै तौ जानू परंतु धर्म अधर्मकू सो नाही जानै ऐसैं मानू भगवान केर पूठया तब मानू केर समंतभद्राचार्य्य मूलकारादिक स्तवन करनेवाले मुनिनकै बुद्धिका अतिशय जनावनेकी इच्छातैं भगवानकू कहैं हैं—

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ॥ ५ ॥

अर्थ—सूक्ष्म कहिये स्वभावकरि क्षीण परमाणु आदिक बहुरि अंतरित कहिये कालकरि जिनका अंतर पड्या ऐसे रामरावणादिक बहुरि दूरस्थ कहिये क्षेत्रकरि दूरवर्ती मेरू हिमवत् आदिक ये पदार्थ हैं ते कोईकै प्रत्यक्ष दृष्ट हैं जातैं यह अनुमेय हैं, अनुमान प्रमाणके विषैं यह जैसे अग्नि आदिक पदार्थ अनुमानका विषय है सो कोई काकू प्रत्यक्ष भी देखे है तैसैं यह सूक्ष्म आदिक भी हैं। ऐसै सर्वज्ञका भले प्रकार निश्चय होय है। इहा कोई कहे—जे पदार्थ अनुमानके विषय हैं ते तौ काईकै प्रत्यक्ष हैं अर जे अनुमान गोचर ही नाहीं ते कैसे प्रत्यक्ष होय? ताकू कहिये—जो धर्मादिक पदार्थनिकू अनुमानका विषय न मानिये तौ सर्व ही अनुमानका उच्छेद होइ है। अर इहा धर्म अधर्म्म पदार्थ विवादमैं आये हैं तिनहीकू साधिये हैं। अन्य पदार्थ विवादमैं न आये तिनकी चरचा नाहीं अर धर्मादिक पदार्थ हैं ते अनुमानके विषय हैं ही। जातैं ते अनित्यस्वभावरूप हैं। काहूके सुख होय जहा जानिये याकै पुण्यका उदय है। काहूके दुःख होइ तहां जानिये याकै पापका उदय है। ऐसैं अनुमानके विषय धर्मादिक पदार्थ हैं। तातैं कोईकै प्रत्यक्ष हैं ऐसैं सर्वज्ञका अनुमानकरि फेर स्थापन किया ॥ ५ ॥

आगैं फेर मानू भगवान पूछ्या—जो ऐसैं सामान्यपणैं तौ सर्वज्ञ सिद्ध भया परंतु ऐसा परमात्मा अरहंत ही है ऐसा निश्चय कैसैं किया जातैं तुमारे हम ही महान् वंदनीक ठहरैं, ऐसैं पूछैं मानू फेर आचार्य जैसैं अरहंत ही सर्वज्ञ ठहरैं ऐसा साधन कहैं हैं—

त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक् ।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥ ६ ॥

अर्थ—हे भगवन्! सु कहिए सो पूर्वोक्त निर्दोष कहिए आवरण अर अज्ञानरागादिक तिनतैं रहित ऐसा सर्वज्ञ वीतराग तुम ही हो, जातैं कैसे हो तुम ? युक्ति अर शास्त्र इन दोऊनतैं विरोध रहित अविरोधि है वचन जिनके ऐसे हो । जैसैं कोइ श्रेष्ठ वैद्य होइ तैसैं । इहां भगवान मानू फेर पूछ्या—जो हे समन्तभद्र ! हमारे वचन युक्ति—शास्त्रतैं अविरोधी कैसैं निश्चय किये ? तहा आचार्य फेरि कहै है—हे भगवन् ! जो तुमारा कह्या इष्ट तत्व मोक्ष अर मोक्षका कारण, संसार अर संसारका कारण यह है सो प्रसिद्ध जो प्रमाण तातैं नाही बाधिये है । जो प्रमाणकरि नाहीं बाध्या जाय सोइ युक्तिशास्त्राविरोधी। इहा वैद्यका दृष्टान्त श्लोकमैं नाही है तोऊ आचार्य स्वयंभूस्तोत्रमैं आप कह्या है तातैं अष्टसहस्री टीकामैं कह्या है । वैद्यभी रोग अर रोगकी निवृत्ती अर तिनके कारणविषैं निर्बाध प्रवर्त्त है, ऐसैं वैद्यका दृष्टान्त है । तहाँ मोक्षादितत्व निर्बाध कैसे हैं सो दिखावै हैं—प्रथम तो भगवान अरहंतका भाष्या मोक्षतत्व है सो प्रमाणकरि बाध्या न जाय है । इंद्रियजनित प्रत्यक्ष प्रमाणका तौ मोक्ष विषय ही नाहीं बाधक कैसे होय, बाधक साधक होय, सो अपने विषयहीका होय। बहुरि अनुमान अर आगमकरि मोक्षका अस्तित्वका स्थापन है ही, कहू दोष आवरणका अत्यंत अभाव भयं अनंत ज्ञानादिकका धाम सो मोक्ष अनुमान आगमतै प्रसिद्ध है । तैसैं ही मोक्षका कारणतत्व सम्यग्दर्शन-ज्ञान चरित्र है त भी प्रमाणकरि सिद्ध हैं । जातैं कारण विना कार्यका न होना प्रसिद्ध है । बहुरि संसारतत्व है सो भी प्रमाणकरि बाध्या न जाय है । अपने उपजाये कर्मके वशतैं आत्माके एक भवतैं

अन्यभवकी प्राप्ति सो संसार है सो प्रत्यक्ष है अनुमानका तौ विषय ही नाहीं तिनकी वाधा कैसैं आवै। बहुरि तिनका विषय होइ तौ ते साधक ही होय, बाधक न होइ। बहुरि संसारका कारणतत्व भी प्रमाणबाधित नाहीं है जातैं कारण विना कार्य होय नाही। मिथ्यादि संसारके कारण प्रसिद्ध हैं। ऐसैं मोक्ष मोक्षका कारण अर संसार संसारका कारण सत्य प्रमाणकरि बाधे न जाँय तातैं भगवान अरहंतके वचन युक्तिशास्त्रतैं बाधे न जाय। सो ऐसे निर्बाध वचन भगवानकै निर्दोषपणाकू साधे ही है। इहाँ कोई कहै—सर्वज्ञ वीतरागकै इच्छा विना उपदेशरूप वचनकी प्रवृत्ति कैसैं संभवै? ताकू कहिए है—वचन प्रवृत्तिकू कारण नियमकरि इच्छा ही नाही है। विना इच्छा भी वचन प्रवृत्ति होइ है, जैसैं सूता आदिकके इच्छा विना वचन प्रवृत्ति होइ है तैसैं जानना, यातैं सर्वज्ञ वीतराग भगवान् स्तुति करनें योग्य है यातैं हे भगवन्! ऐसे तुम ही मोक्ष मार्गके प्राप्त करनेवाले हो अन्य कपिल कहिये सांख्यमती आदिक ऐसे नाहीं है ॥ ६ ॥

सोई दिखाइये हैं—

स्वन्मतामृतबाह्याना सर्वथैकान्तवादिनाम्।
आप्ताभिमानदग्धाना स्वेष्ट दृष्टेन बाध्यते ॥ ७ ॥

अर्थ—हे भगवन्! तुम्हारा मत अनेकांत स्वरूप वस्तु है। तथा ताका ज्ञान है सो बहु अमृत जो मोक्ष ताका कारण है तातैं बहू मतभी अमृत है, सर्वथा निर्बाध है, तातैं भव्यजीवनिके परितोषका उपजावनेंवाला है यातैं बाह्य सर्वथा एकान्त है। तिसके अभिप्रायवाले तथा कहनेंवाले सांख्य आदि मतके प्ररूपक कपिल आदिक हैं ते आप्तपणाके अभिमान करि दग्ध हैं; जातैं ऐसे मानें हैं जो हम आप्त हैं अर बाधासहित सर्वथा एकान्तके कहनेंवाले हैं तातैं झूठा

आगैं अभावैकान्त पक्षविषैं दूषण दिखावै हैं।

अभावैकान्तपक्षेऽपि भावापन्हववादिनाम्।
बोधवाक्य प्रमाणं न केन साधनदूषणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—अभाव कहिये किछु भावरूप वस्तू नाही ऐसा अभाव एकान्त पक्ष है ताकै होतैं भावका लोप भया सो इस भावके लोप कहने वाले वादीनिकै बोध कहिये ज्ञान जिसतैं अपणा अर्थ—तत्वका साधन दूषण करिये अर वाक्य कहिये परका अर्थतत्वका साधनदूषण-रूप वचन इनका अभाव आया तब प्रमाणकी व्यवस्था न ठहरी तब अपणा अभावैकात पक्ष काहेकू थापै अर परका भावपक्ष काहेतैं दूषै। बहुरि जो स्वपक्षका साधन दूषण मानिये तो भावपक्षकी सिद्ध होइ है। ऐसा दूषण आवै है तातैं अभावैकान्तपक्ष कल्याणकारी नाहीं है ॥१२॥

आगैं कहैं हैं—जो परस्पर अपेक्षारहित भावाभाव पक्ष अवक्तव्य पक्ष भी कल्याणकारी नाही है ऐसैं स्वामी समन्तभद्राचार्य्य कहैं हैं—

विरोधान्नोभयैकान्त स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—उभय कहिये भाव अर अभाव ये दोऊ एकात्म्य कहिये एकस्वरूप सो नाही है तातैं स्याद्वादन्यायके विद्विषा कहिये शत्रु विरोधी तिनकै भाव अभाव दोऊ एक स्वरूप कहनेमैं परस्परपरिहारस्थिति-लक्षण विरोध आवै है। बहुरि अवाच्य कहिये कहनेमैं न आवै ऐसा अवक्तव्य एकान्त मानिये तौ वस्तु अवक्तव्य है, ऐसो कहनौ युक्ति न होइ है। तहा ऐसा जानना जो भाव पक्षमैं अर अभाव पक्षमैं न्यारे न्यारे मानैं दोष आवै ताके दूर करनेकी इच्छाकरि दोऊकू एक-स्वरूप माननेंवालेकै विधि निषेधके परस्परपरिहारस्थितिस्वरूपपणा

प्रयोजन है। बहुरि कोई प्रकार कहनेतैं सर्वथाका निषेध भया सोहू फेर सर्वथा नाही ऐसा नियमके अर्थि वचन है। ऐसैं प्रश्नके वशतैं एक वस्तुविषैं अविरोधकरि विधिप्रतिषेधकी कल्पनातैं सप्तभंगकी प्रवृत्ति होइ है। ऐसैं नयवाक्यमात्र ही है। विधिनिषेधके भंग सात ही हैं। इनतैं अन्य नांहीं होइ हैं। जो संयोग भंग कीजिये तौ इनहीमैं अंतर्भूत होइ हैं तथा कोई पुनरुक्त होइ हैं। बहुरि यह सातप्रकार वस्तु धर्म है—असत् कल्पना नाहीं है। इनहीतैं वस्तुका यथार्थ ज्ञान अर वस्तुके अर्थक्रियारूप प्रवृत्तिका निश्चय होइ है। इनमैं सत् असत् अवक्तव्य ये तीन भंग तौ एक एक ही हैं बहुरि सत् असत् क्रम-करि कहना, अर सदवक्तव्य, असदवक्तव्य ये तीन द्विसंयोगी हैं, बहुरि सत्-असत् अवक्तव्य यह एक त्रिसंयोगी है। सत्, असत्, सत् असत्—क्रमकरि कहना ये तीन तो वक्तव्य भये अर एक अवक्तव्य का ऐसैं चार तो ये अर वक्तव्य अवक्तव्य का संयोग भंग करनेतैं तीन फेर भये ऐसैं सात भंग भये हैं। इहा सत् आदि शब्द हैं ते तौ अने-कान्तके वाचक हैं अर कथंचित् शब्द है सो अनेकान्तका द्योतक है बहुरि याकै आगैं एवकार शब्द है सो अवधारण करिये नियमके अर्थि होइ ह। बहुरि यह कथंचित् शब्द है सो याका पर्य्यायशब्द स्यात् ऐसा है। सो सर्व वचननि परि लगाइये हैं ऐसो जहा याका प्रयोग नाही होइ तहा भी जे स्याद्वाद न्यायमैं प्रवीण है ते सामर्थ्यसू जाणि लेहैं। स्यात् शब्द विना सर्वथा रूप ही वस्तु है इत्यादि कहनेमैं अनेक दोष आवै है तिनकी चरचा टीकातै जाननीं ॥ १४ ॥

आगैं पहली कारिकामैं नययोग कह्या सो अब पहले दूसरे भंगविषैं नययोग दिखावे हैं—

इष्ट अनिष्टकी व्यवस्था विना कहूं ठहरना नाहीं। तातैं यहू भले प्रकार कह्या हुआ बणै है जो सत्व असत्व एक वस्तुमैं न मानिये तौ स्वपर-तत्वकी व्यवस्था न ठहरै तब सर्वथा एकान्ती कहू ठहरै नाहीं ॥१५॥

आगैं ऐसैं प्रथम द्वितीय भगका स्थापनकरि अब तृतीयादिक भग-निकू आचार्य निर्देश करै है—

क्रमार्पितद्वयाद्द्वैत सहावाच्यमशक्तितः ।
अवक्तव्योत्तराः शेषास्त्रयो भंगाः स्वहेतुतः ॥ १६ ॥

अर्थ—क्रमार्पित कहिये पहलैं न्यारे न्यारे कहे जे सत् असत् ते दोऊ अनुक्रमतैं कहनैंतैं वस्तु द्वैत है । बहुरि सत् असत् ये दोऊ सह कहिये युगपत् एककाल अवाच्य कहिये कहनेमैं न आवै तातैं युगपत् कहनेकी वचनकै सामर्थ्य नाहीं तातैं अवक्तव्य हैं । बहुरि शेषा कहिये अवशेष जे तीनभग अवक्तव्य है उत्तर पद जिनकैं ऐसैं ते अपनैं अपनैं हेतुतैं लेणें। तहां अनुक्रमकरि अर्पण किया जो स्वरूपादि अर पररूपादिकका चतुष्टय द्रव्य क्षेत्र काल भावका दिक तातैं तौ कोई प्रकार सत्-असत् ऐसा दोऊका एक भग है। याकू द्वैत ऐसा नाम कह्या सो द्वित शब्दपर स्वार्थविषैं ' अण् ' प्रत्ययकरि द्वैत शब्द निपजाया है। बहुरि अपना अर परका स्वरूपादिक चतुष्टय अपेक्षा एक काल कहनेंकी अशक्तितैं अवक्तव्य है। जातैं जिस प्रकार कहनेंवाला पद तथा वाक्यका अभाव है। बहुरि याका तीन भंग पाचमा छटमा सातमा सत् असत् उभय इनकै अवक्तव्य उत्तरपद लगाय अपने हेतुकै वशतैं कहनें, ते कैसैं ? कोई प्रकार सत् अवक्तव्य ही है, जातैं स्वरूपादि चतुष्टयकी अपेक्षा तौ सत् ऐसा वक्तव्य है परतु सत् असत् ऐसे दोऊ एक कालवस्तुमैं हैं तातैं एक काल कहे नाहीं जाय हैं तातैं अवक्तव्य भी है, ऐसैं यहु पाचमा भग है । बहुरि ऐसैं ही कोई प्रकार असत् अवक्तव्य भी है.

तातैं परद्रव्यादि चतुष्टयका अपेक्षा तो असत् ऐसा कह्या जाय है अर सत् असत् ये दोऊ एक काल है परंतु एककाल कहे जाते नाहीं, तातैं असत् अवक्तव्य है, ऐसैं छट्टा भग है। बहुरि कोई प्रकार सदसदवक्तव्य हौं है। जातैं सत् असत् ये दोऊ क्रमकरी कहे जाय हैं अर दोऊ एककाल कहे न जाय हैं तातैं सदसदवक्तव्य ऐसा सातमा भग है। एसैं यह वक्तव्यावक्तव्यस्वरूप तीन भग पूर्वोक्त च्यार भगनितैं न्यारे ही हैं। बहुरि तिनमैं सदसद् उभय इन तीनमैंसू एक न होय तो अवक्तव्य धर्म बणैं नाही जातैं तिन तीनूनकू होतैं भी तिनकी विवक्षा न करते केवल एक न्यारा ही अवक्तव्य भग कहनेमैं विरोध नाही है। ऐसैं इन भंगनिकी स्वमत परमत अपेक्षा सप्तभंगीकी चरचा अष्टसहस्रीमैं है तहांतैं जाननी ॥ १६ ॥

आगैं कहैं हैं—जो वस्तुका स्वरूप अस्तिरूप ही है, नास्तित्व वस्तुका स्वरूप नाही है सो परवस्तुके स्वरूपके आश्रय है, एक ही वस्तुके आश्रय होनेमैं अतिप्रसंग दूषण आवै है, ऐसी तर्क होतैं आचार्य कहैं हैं—

अस्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि ।
विशेषणत्वात् साधर्म्यं यथा भेदविवक्षया ॥ १७ ॥

अर्थ—अस्तित्व धर्म है सो एक धर्म जो जीव आदिक तामैं प्रतिषेध्य जो [अस्तित्वकौ] नास्तित्व ताकरि अविनाभावी है। नास्तित्व विना अस्तित्व नाहीं होइ, दोऊका भिन्न आधार नाही। तातैं या अस्तित्व नास्तित्वकै विशेषणपणा है। जा विशेषण होइ सो एक धर्मिविषैं अपना प्रतिपक्ष धर्मसूं अविनाभावी होइ। जैसैं हेतुका [illegible] सो भेदविवक्षा कहिये वैधर्म्य ताकरि अविनाभा[illegible] प्रसिद्ध है। जहां अन्वय होइ तहां

जैसैं घटविषै अस्तित्व है जैसैं यह पट नाहीं है ऐसा नास्तित्व भी है। जो इहा नास्तित्व नाहीं होय तो घट पट भी होइ जाय। ऐसैं अस्तित्व धर्म है सो एक धर्मीविषै नास्तित्वधर्मकरि अविनाभावी जानना॥ १७॥

आगैं फेर पूछे—जो अस्तित्व तौ नास्तित्वकरि अविनाभावी होइ अर नास्तित्व अस्तित्वकरि अविनाभावी कैसे होइ, आकाशके फूलकै तौ अस्तित्वका कोई प्रकार भी संभवै नाहीं याकै तो नास्तित्व ही है ऐसे पूछै आचार्य कहै हैं—

नास्तित्वं प्रतिषेध्येनाविनाभाव्येकधर्मिणि।
विशेषणत्वाद्वैधर्म्यं यथाऽभेदविवक्षया ॥ १८॥

अर्थ—नास्तित्व धर्म है सो अपना प्रतिषेध्य जो अस्तित्व धर्म ताकरि एक धर्मीविषै अविनाभावी है। जातैं यह विशेषण है जैसैं हेतुके प्रयोगविषै वैधर्म्य है सो अभेद विवक्षा कहिये साधर्म्यरूप प्रतिषेध्यधर्मकरि अविनाभावी है यह सर्व हेतुवादीनिकै प्रसिद्ध है, जैसैं शाब्दक अनित्यपणां साधनेविषै कृतकपणा हेतु आकाशादि विपक्षमैं धर्मरूप है सो घटादिसपक्षतैं समान धर्मरूप जो साधर्म्य ताकरि अविनाभावि विशेषण है ऐसा उदाहरण जीवादि एकधर्मीविषै परद्रव्यादिकरि नास्तित्वकू स्वद्रव्यादिकरि अस्तित्वकरि अविनाभावी साधै ही है। इहा भावार्थ ऐसा—जो अस्तित्व नास्तित्व दोऊ परस्पर विधिनिषेधस्वरूप हैं, विधि विना निषेध नाहीं निषेध विना विधि नाहीं॥ १८॥

आगैं पूछै है—जो अस्तित्व (नास्तित्व) तौ विशेषण कहिये हैं विशेष्य नाहीं है। तातैं अस्तित्व नास्तित्वके अविनाभावि साधनेकू दोय कारिका अनुमानप्रयोगकी कही सो विशेषणरूप धर्म तौ साध्यसाधनकै आधार होइ नाहीं तातै अनुमानका प्रयोग कैसैं बणै, केइ तौ ऐसैं कहै हैं।

बहुरि कोई ऐसें कहैं हैं—जो वस्तुका स्वरूप तौ वचनगोचर नाहीं तातैं कहना बणैं नाहीं। बहुरि कोइ ऐसें कहैं हैं—जो जीवादिक वस्तुके अत्यंत भेद ही है जैसें घट पट भिन्न है तातैं अस्तित्व नास्तित्व भिन्न ही हैं-तिन स्वरूप वस्तु नाहीं ऐसें कहनेवालेनि प्रति आचार्य कहै हैं—

विधेयप्रतिषेध्यात्मा विशेष्य शब्दगोचरः ।
साध्यधर्मो यथा हेतुरहेतुश्चाप्यपेक्षया ॥ १९ ॥

अर्थ—विशेष्य कहिये विशेषणक योग्य सर्व ही जीवादिक पदार्थ हैं सो, विधेय कहिये विधिके योग्य अस्तित्वधर्म, अर प्रतिषेध्य कहिये निषेध योग्य नास्तित्वधर्म इनि दोऊ धर्मनिस्वरूप है। जातैं विशेषणके योग्य विशेष्य होय सो ऐसा ही होय। बहुरि इस विशेषणपणाकै साधनेकू विशेषण (विशेष्य) है, सो कैसा है? विशेष्य शब्दगोचर कहिये शब्दका विषय है अर्थात् जो शब्दकरि कहिये ऐसा विशेष्य विधिप्रतिषेधस्वरूप ही होय। अब याका उदाहरण कहैं है—जैसे साध्यका धर्म हेतु है सो अपेक्षाकरि विधिप्रतिषेधस्वरूप ही होय। जहां साध्यकूं साधै तहा तौ हेतु होय अर जहा साध्यकू नाहीं साधै तहा हा अहेतु होय। जैसे शब्दकू अनित्य साधिये तब कृतकपणा ताका धर्मकू हेतु होय सो ताकै अनित्यपणा साधै। बहुरि सो ही कृतकपणा शब्दकू नित्य साधनेमैं अहेतु होय। तथा जहा अग्निमानपणा साधिये तहा धूमवानपणा हेतु है सो ही ताके निपक्ष जलक निवासविषैं अहेतु है ऐसैं जानना। ऐसैं विधिप्रतिषेधस्वरूप जीवादिक पदार्थ हैं सो शब्दगोचर हैं ऐसा सिद्ध होय है ॥ १९ ॥

आगैं पूछै हैं—जो च्यार भग तौ स्पष्ट किये ताका तीन भग कैसैं [illegible]णें, ऐसैं पूछैं आचार्य उत्तर कहैं हैं—

शेषभगाश्च नेतव्या यथोक्तनययोगतः ।
न च वस्तिद्विरोधोऽस्ति मुनीन्द्र ! तव शासने ॥ २० ॥

अर्थ—शेषभगा कहिये बाकीके तीन भग हैं ते पूर्वं जे अस्तित्व नास्तित्वकी दोय कारिकामैं नय कही ताके योगतै प्राप्त करणें, तहा हे मुनीन्द्र ! तुम्हारे शासन कहिये आज्ञा मत तामैं किछू भी विरोध नाहीं है । यहा कारिकामैं शेष वचन है सो उत्तरके तीन भंगनिकी अपेक्षा है जातै पहली दोय कारिकामै अस्तित्व नास्तित्व दोऊ ही अपने अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विशेषणपणा हेतुतैं साधे । बहुरि या कारिकातैं पहलैं कारिकामैं विधिप्रतिषेधस्वरूप विशेष्यवस्तू शब्दगोचरतैं साध्या सो यहू तीसरा भग साध्या सो याकू भी विशेषणपणा हेतुतैं अपना प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विधिनिषेधरूप जानना । बहुरि तैसैं सामर्थ्यतैं अवक्तव्य ही अपणा प्रतिपक्षी वक्तव्य धर्म ताकी अपेक्षा विशेषणपणा हेतुतैं विधिनिषेधरूप जानना, ऐसैं च्यार भग तौ यह अर शेष तीन भग अस्तित्वावक्तव्य, नास्तित्वावक्तव्य, अस्तित्वनास्तित्वावक्तव्य ऐसैं अपने अपने प्रतिपक्षीकी अपेक्षा विशेषणपणा हेतुतैं विधिप्रतिषेधरूप जाननें, ' विशेषणत्वात्, ऐसा नययोग है सो सर्वके लगावणा जातैं एकधर्मी जीवादिक वस्तुविशेषनिविषैं एक धर्म विशेषण है ऐसैं सर्वज्ञके मतमैं किछू भी विरोध नाहीं है अपने प्रतिपक्षी धर्मतैं अविनाभावी विशेषणकू जे अन्यवादी नाहीं साधे हैं तिनहाके मतमैं विरोध आवै है ॥ २० ॥

आगैं अब आचार्य कहैं हैं—विधिनिषेधकरि अवस्थित नाहीं ऐसा अनेकान्तात्मक वस्तु है सो सप्तभगी वाणीकी विधिका भागी है सो ही अर्थक्रियाका करनेवाला है। बहुरि अन्यप्रकार नाहीं है। जो अस्ति ही है तथा नास्तित्व ही है ऐसी कल्पना सर्वथा एकान्तरूप करै है सो असत्

कल्पना है—वस्तुका रूप नाहीं। ऐसैं अपने पक्षका साधन अर परपक्षका दूषणरूप वचनकू समेटता सता—सकोचता सता कहैं है—

एव विधिनिषेधाभ्यामनवस्थितमर्थकृत्।
नेति चेन्न यथा कार्यं बहिरन्तरुपाधिभिः ॥ २१ ॥

अर्थ—एवं कहिए पूर्वोक्तप्रकार न्यायकरि सप्तभंगीविधिनिषेधकरि अनवस्थित जीवादिक वस्तु है सो अर्थकृत् कहिए अर्थक्रियाकू करैं है—कार्यकारी हैं। बहुरि नेति चन् कहिये अन्यवादी ऐसैं नाहीं (मानैं) तो तिनके बाह्य अतरंग उपाधि कहिये कारणनिकरि कार्य तिन वादीनिनैं मान्या है तैसैं नाहीं होय है। तहा जीवादि वस्तु सत् ही है अथवा असत् ही है ऐसैं सर्वथा न होय किंतु कथंचित् सत् हैं अर कथंचित् असत् हैं ऐसै होय तातूं अनवस्थित कहिए सो ही वस्तु कार्यकरनेवाला है। बहुरि जो अन्यवादी सर्वथा एकांतकरि सत् ही है अथवा असत् ही है ऐसा अवस्थित कहैं है तिनकै तिननैं जैसा कार्यसिद्ध होना बाह्य अतरंग सहकारी कारण अर उपादानकारणकरि मान्या है तैसा नाहीं सिद्ध होय है। याकी विशेष चरचा अष्टसहस्रीतैं जानना ॥ २१ ॥

आगैं तर्क—जो वस्तु अनेक धर्मस्वरूप मान्या तहा अस्तित्व आदि धर्मनिकै धर्मीकरि सहित उपकार्य—उपकारकभाव होनैं सतैं धर्मनिकै उपकार धर्मी करैं है कि धर्मीकै उपकार धर्म करै है। तहा भी धर्मी एक शक्तिकरि करै है कि अनेक शक्तिकरि करै है? तहा भी वादा दूषण बतावै तिन सर्वहीका निराकरण करते सतैं आचार्य कहैं है—जो एकधर्मीविषै अनेक धर्म हैं तातैं कथंचित् सर्व प्रकार सभवै है धर्म धर्मीकै अंग-अंगीभाव है तातैं अनेकांत कहनेमैं विरोध नाहीं है—

वास्तवमैं सभवै नाहीं । जातैं कर्ता क्रिया आदिमैं तौ उपजना विनशना है सो यह मानिये तौ ब्रह्म अनित्य ठहरै अर द्वैतका प्रसग आवै तथा उपजना, विनशना एकहीकैं आपहीतैं अन्य कारण विना होय नाहीं । यदि ये भेद अविद्यातैं मानैं तौ अविद्याकू तौ अवस्तु मानैं है अर अवस्तुकै कार्यकारणविधान सभवै नाहीं । बहुरि अविद्याकूं यदि वस्तु मानैं तौ द्वैतपणा आवै इत्यादि प्रत्यक्ष अनुमान प्रमाणतैं विरोध आवै है ताकी चर्चा अष्टसहस्रीतैं जाननी ॥ २४ ॥

आगैं इस अद्वैतपक्षविषैं ही अन्य दूषण दिखावते सते आचार्य कहै है—

कर्मद्वैत फलद्वैत लोकद्वैत च नो भवेत् ।
विद्याविद्याद्वय न स्याद्बन्धमोक्षद्वय तथा ॥ २५ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त अद्वैतपक्षातपक्षत लौकिक अर वैदिक कर्म अथवा शुभ-अशुभकर्मका आचरण अरु पुण्य-पाप कर्म ऐसा कर्मद्वैत न ठहरै । बहुरि कर्मद्वैतका फल भला-बुरा, सुख-दुखका द्वैत न ठहरै । बहुरि फल भोगनेका आश्रय यह लोक न ठहरै । यदि यहा ऐसा कहै जो कर्म आदिका द्वैत अविद्याके उदयतैं है तौ ताका उत्तरमैं कहिये है कि धर्म-अधर्मका द्वैतका अभाव होतैं विद्या-अविद्याका द्वैत सभवै नाहीं । बहुरि विद्या-अविद्या नाहीं तब बन्ध-मोक्षके द्वैतका अभाव होय । बहुरि यदि विद्या-अविद्या भी कल्पित मानैं तो शून्यवादीकी कल्पना भी मानना ठहरै सो यह युक्त नाहीं । परीक्षाप्रधाना तो परमार्थरूप किछू फल विचारि प्रवर्तै हैं । पुण्य-पाप, सुख-दुख, यहलोक-परलोक, विद्या-अविद्या, बन्ध-मोक्ष ऐसैं विशेषरहित परीक्षावान आदरै नाहीं । शून्यवादकू कौन आदरै ? ॥ २५ ॥

आगैं अद्वैतवादी कहै कि हम ब्रह्म-अद्वैत मानैं हैं सो प्रमाणतैं सिद्ध भया मानैं हैं। तहां अनुमान प्रमाण तौ ऐसा है जो प्रतिभासमैं नाना वस्तु आवै हैं सो प्रतिभासस्वरूप भयें प्रतिभासमैं प्रवेशरूप ही हैं जैसैं प्रतिभासका स्वरूप है, तैसैं ही ते नाना हैं, सुख प्रतिभासै हैं, रूप प्रतिभासै है ऐसैं है यामैं कछु बाधा नाहीं है। बहुरि आगम जो वेद तातैं भी ऐसा ही सिद्ध होय है जातैं भेद है। वेदमैं ऐसा कह्या है—ब्रह्म—शब्दकरि समस्त वस्तु कहिये है। बहुरि वेदके जो उपनिषद् वचन हैं तिनमैं ऐसा कह्या है—जो यह ग्राम आराम आदिक सर्व हैं ते सर्व ब्रह्म हैं नाना किछू भी नाहीं है, लोक नानारूप देखै है, तिस ब्रह्मरूप नाहीं देखै है सो लोकका अविद्या है, इत्यादि, ताकै प्रति उत्तरद्वारा निषेध-करनेके इच्छुक आचार्य कहै हैं—

हेतोरद्वैतसिद्धिश्चेद् द्वैत स्याद्धेतुसाध्ययोः।
हेतुना चेद्विना सिद्धिद्वैत वाङ्मात्रतो न किम् ॥ २६ ॥

अर्थ—हे अद्वैतवादी! जो तू हेतुतैं अद्वैतकी सिद्धि मानेगा कि "जो सर्व नाना वस्तु दीखै हैं सो प्रतिभासमैं सर्व गर्भित भये, प्रतिभास-वाली होनेतैं" ऐसैं तौ हेतु अर साध्य दोय ठहरै, तब द्वैतपणा आया। बहुरि यदि हेतु विना आगममात्रतैं अद्वैतकी सिद्धि मानैं तौ द्वैतता हू वचनमात्रतैं कैसैं न होय। तथा आगम अर अद्वैतब्रह्म ऐसैं दोय ठहरै तब द्वैतपना क्यों न आवै ॥ २६ ॥

आगैं अन्य दूषण दिखावै हैं—

अद्वैत न विना द्वैतादहेतुरिव हेतुना।
सञ्ज्ञिनः प्रतिषेधो न प्रतिषे यादते क्वचित् ॥ २७ ॥

अर्थ—हे अद्वैतवादिन्! अद्वैत है सो द्वैत विना नाहीं हो सकै। अद्वैत शब्द है सो अपना अर्थका प्रतिपक्षी जो परमार्थस्वरूप द्वैत

ताकी अपेक्षा है। जातैं यह अद्वैतशब्द निषेधपूर्वक अखंड पद है, जैसें अहेतु शब्द है सो हेतु बिना न होय है तैसा। जहां एक अर्थका वाचक एकपद होय ताकू अखंड पद कहिये सो यहां निषेधपूर्वक द्वैतशब्दका पृथक् होय अथ परमार्थभूत नाहीं है एक ही अर्थ है तातैं अपना प्रतिपक्षी जो द्वैत ताबिना न होय। बहुरि यहां अद्वैत विषाण ऐसा शब्द होय तौहरि अतिप्रसंग नाहीं है। जातैं या विषाण शब्दका निषेध है सो सो शब्दकरि सहित भया तब अखंड पद न रह्या विषाण शब्द भया सो एकपद भया तब याका अर्थ किछू वस्तु नाहीं ताका निषेध भी वस्तु नाहीं ताके समान यह अद्वैत शब्द है नाहीं याका तो प्रतिपक्षी द्वैतशब्द है ताका परमार्थभूत अर्थ विद्यमान है। तातैं निषेधपूर्वक अखंड पद जो द्वैत ताबिना अद्वैत नाहीं है। याहातैं सामान्यवचन ऐसा है—जो सामान्य पदार्थ प्रतिषेध्य कहिये निषेध योग्य वस्तु जिस बिना प्रतिपक्ष कछू नाहीं होय है। जो अपरिणामी तरह होय तो ताका सामान्य पदार्थ ही नाहीं तातैं ऐसा सामान्य प्रतिषेध्य बिना भी होय है। बहुरि कहै कि दूसरेनें मान्या जो अविद्याके कारण द्वैत ताका प्रतिपक्षी अद्वैत सिद्ध होय है तब तेरे द्वैत की सिद्धि कैसें न होय? बहुरि अद्वैतवादी कहै—जो हम अविद्या वस्तुभूत मान नाहीं, प्रमाणतैं अविद्या सिद्ध होय नाहीं, तातैं द्वैतकी सिद्धि न होय। जो ब्रह्मकूं अविद्यावान मानिये तौ बड़ा आवै। बहुरि ब्रह्मकूं निर्दोष मानिये तौ अविद्याके अनर्थकपणा आवै बहुरि याकै अविद्या नाहीं है ऐसा अस्तित्व अविद्याका अविद्या कल्पितमें है। बहुरि यह अविद्या ब्रह्मद्वारें तीसरी है ऐसा कोई प्रमाण सिद्ध न होय है। बहुरि अनुभवतैं अविद्या है ऐसैं ब्रह्म अनुभव सहित होय है। तातैं प्रमाणरूप ज्ञानेंकरि बाधित अविद्या होय

अविद्याके अध्यात्मपणका प्रसग आवै है । बहुरि ब्रह्मकू जानें विना अविद्याकू कैसैं जानैं ? बहुरि ब्रह्मकू जाणें अविद्याका अनुभव विना बाधना न होय है जातैं वस्तुभूत होय तब बाधा सभव है। बहुरि अविद्यावान पुरुष अविद्याकू निरूपण करनेकू समर्थ न होय तातैं वस्तुके वर्तनकी अपेक्षा तौ अविद्या थपै नाहीं जातैं वस्तु विना अथनिपैं प्रमाणका व्यापार होय नाहीं । अर अविद्या वस्तु है नाहीं तातैं अविद्याके अविद्यापणाविषैं असाधारण लक्षण ऐसा है जो ' प्रमाणकी बाधाकू सहवेकू समर्थ नाहीं, ऐसा जाका स्वभाव है सो अविद्या है ' सो ससारीके स्वानुभवके आश्रय है तातैं अद्वैतवादीके कछु दोष नाहीं आवै है । बहुरि द्वैतवादी ससारी है सो माया प्रपच प्रमाण बाधित है ताकू अनेकप्रकार कल्पै है यातैं द्वैतवादीकै अनेक दोष आवैं हैं ? ताकू कहिये—जा सकलप्रमाणम्‌ अतीत अविद्याकू अगीकार कर सो काहेका परीक्षावान है । अविद्याके भी कथचित् वस्तुपणा मानि प्रमाणका विषयपणा मानैं । प्रमाणतैं सत् असत् का निश्चय करै सो ही परीक्षावान है । बहुरि शब्दाद्वैतवादका तथा सवेदनाद्वैतवाद एकान्तपक्षका भी ब्रह्माद्वैतपक्षके समान निराकरण जानना ॥ २७ ॥

आगैं कोई कहै—जो अद्वैत एकान्तका निराकरण किया है तौ हम प्रथक्त्व—एकान्त अगीकार करैंगे ताकू आचार्य कहैं है—जो ऐसै अवधारण मत करो जातैं प्रथक्त्व—एकात भी बाधासहित है सो ही दिखावैं हैं—

पृथक्त्वैकान्तपक्षेऽपि पृथक्त्वादपृथक्कुतौ ।
पृथक्त्वे न पृथक्त्व स्यादनेकस्थो ह्यसौ गुणः ॥ २८ ॥

अर्थ—पृथक्त्व कहिये पदार्थ सर्व भिन्न ही हैं ऐसा एका पक्ष होतैं पृथक्त्वनामा गु अर गुणी इन दोऊ

पृथक्पणा कहिये भिन्नपणा होते ते दोऊ अपृथक् कहिये अभिन्न ही ठहरे हैं। ऐसैं यह पृथक्त्वनामा गुण ही नहीं ठहरै है। जातैं पृथक्त्वगुणकू एककू अनेक पदार्थनिमैं ठहऱ्या माने है सो पृथक्त्वगुण कहना निष्फल भया। यहां ऐसा जानना जा वैशेषिक द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय ऐसैं छह पदार्थ मानैं है। अर तिनके उत्तरभेद ऐसै है जो द्रव्य नौ, गुण चौवीस, कर्म पांच, सामान्य दोय प्रकार, विशेष अनेक तथा समवाय एक है। तिनमैं गुणके चौवीस भेदनिमैं एक पृथक्त्वनामा गुण मानैं ह सो यह गुण सर्व द्रव्य गुण आदि पदार्थनिकू भिन्न भिन्न करै है ऐसा मानै है। बहुरि नैयायिक प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितंडा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ऐसैं सोल्ह पदार्थ मानै है तिनकू भिन्न भिन्न ही माने है। तिनके पदार्थनिका सर्वथा भिन्न पक्ष होते तिनकू पूछिये कि पृथक्त्व नामा गुणतैं द्रव्य गुण ये दोऊ अभिन्न है कि भिन्न है? जो कहै—अभिन्न हैं तौ सर्वथा भिन्नका एकांत पक्ष कस ठहरै। बहुरि कहै—जो द्रव्य, गुण, पृथक्त्वगुणतैं भिन्न है तो द्रव्य, गुण अभिन्न ठहरे। पृथक्त्वगुण न्यारा है तिसनैं द्रव्य, गुणका महा किया किछू भी नाही किया जातैं पृथक्त्व गुण एक है अर अनेकम ठहरया माने है। ऐसै इस कारिकाके व्याख्यानतैं सर्वथा भेदवादी नैयायिक, वैशेषिकका सर्वथा पृथक्त्व—एकांतपक्षमैं दूषण दिखाया ॥ २८ ॥

आगे अनित्यवादी बौद्धमती पृथक्त्व—एकांत ऐसैं माने है—जो सर्व पदार्थ परमाणुरूप, निरंश, निरवयव, जिनश्वर, भिन्न भिन्न है। तिनमैं काहू प्रकार मिलाप जोड—नाहीं। ऐसा एकांत माने है ताकिये

* करनेकी इच्छाकरि आचार्य कहै है—

सतानः समुदायश्च साधर्म्यं च निरङ्कुशः ।
प्रेत्यभावश्च तत्सर्वं न स्यादेकत्वनिन्हवे ॥ २९ ॥

अर्थ—जीव आदिक द्रव्यनिकै एकपणेका लोप मानिये तथा अपने पर्यायनितैं भी एकतारूप अन्वय न मानिये तौ सतान न ठहरै। जातैं क्रमरूप पर्यायनिमैं जीवादि द्रव्य अन्वय रूप होय सो संतान है, अर सो सतान क्षणिक पक्षकरि पर्यायनिकै सर्वथा भेद ही माननेमैं सतान परमार्थभूत न बनैं। अन्य सतानकी तरह ठहरै। बहुरि समुदाय भी न ठहरै जातैं एकस्कंधमैं अपने अन्वयवनित एकता होय सो समुदाय है, यह समुदाय भी सर्वथापृथक्त्वपक्षमैं न बनैं। बहुरि साधर्म्य भी न ठहरै । समानधर्म जिनके है तिनकै समानपरिणामनिकी एकताकू साधर्म्य कहिये है सो पृथक्त्व एकान्तपक्षमै एकताका लोप होतैं यह भी न बनैं । बहुरि प्रेत्यभाव कहिये परलोक सो भी न ठहरै। मर मर कर फेर फेर उपजना ताकू परलोक कहिए हैं सो दोऊ भवमैं एक आत्माका लोप मानें यह भी न बनै। तथा वर्तमानमैं इसभवमै भी बाल्य, यौवन, वृद्धपणा आदि अनेक अवस्था होय है तिनमैं एकपणाका प्रत्यक्ष अनुभव है सो यह अनुभव भी पृथक्त्वएकान्तपक्षमैं विरोध्या जाय तब देने—लेनेका व्यवहार भी नष्ट होजाय है। बहुरि सतान, समुदाय, साधर्म्य अर परलोक ये निर-बुध हैं—अवश्य है तथा प्रमाणसिद्ध हैं तिनका अभाव कैसैं मानिये अर एकपणाका लोप होतैं पृथक्त्व—एकान्तपक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ २९ ॥

आगै पृथक्त्वएकान्तपक्षदोषविषै अन्य दूषण दिखावते संते आचार्य कहैं हैं—

सदात्मना च भिन्नं चेज्ज्ञानं ज्ञेयाद् द्विधाप्यसत् ।
ज्ञानाभावे कथं ज्ञेयं बहिरन्तश्च ते द्विषाम् ॥ ३० ॥

अर्थ—ज्ञान है सो ज्ञेय वस्तुते सत्स्वरूपकरि भी जो भिन्न मानिये तो दोऊ ही प्रकार असत्स्वरूप होय। ज्ञानतैं सत् भिन्न मानिये तब ज्ञान असत्स्वरूप होय अर ज्ञेयतैं सत् भिन्न मानिये तो ज्ञेय असत्स्वरूप होय है। बहुरि ज्ञानतैं ही सत् भिन्न मानिये तो ज्ञानका अभावहोतैं ज्ञेयका भी अभाव ही होय जातैं ज्ञान ज्ञेयका अविनाभाव तौ पर स्पर अपेक्षातैं सिद्ध है सो एकका अभाव होतैं दूजेका भी अभाव होय। यातैं आचार्य कहैं हैं—हे भगवन्! तुम्हारे द्वेषी जे सर्वथा एकान्तवादी तिनके बाह्य अर अंतरंग ज्ञेय ते कैसैं टहरैं? । बाह्य ज्ञेय तो घट पट आदिक अर अंतरंग ज्ञेय जीवात्मा तथा ज्ञान आदिक इन सबनिका अभाव टहरै। तात पृथक्त्व—एकान्त कहनेवाले बौद्ध तथा वैशेषिकनू यह लाहना (प्रालम्भ—दूषण) सत्यार्थ है ॥ ३० ॥

आगैं बौद्धमतानू निरोधकरि दूषण दिखावै हैं—

सामान्यार्था गिरोऽन्येषा विशेषो नाभिलप्यते ।
सामान्याभावतस्तेषां मृषैव सकला गिर ॥ ३१ ॥

अर्थ—अन्येषा कहिये अन्य जे बौद्धमती तिनके मतमैं गिर कहिये वाणी—वचन हैं सो सामान्यार्था कहिए सामान्य है अर्थ जिनका ऐसे हैं तिन वचननिकरि विशेष जो वस्तुका निजलक्षण सो नाहीं कहिए है। तिन बौद्धमतानके सामान्यके अभावतैं समस्त वचन हैं ते मिथ्या ठहर है। भावार्थ—बौद्ध ऐसैं मानैं है कि वचन तो सामान्यमात्रू कहे है अर सामान्य वस्तुभूत नाहीं बुद्धिकरि कल्पिये हैं अर वस्तुका स्वलक्षण है सो अनिर्देश्य है वचनगोचर नाहीं, ताकू आचार्य कहैं हैं—जो सामान्य तौ वस्तुभूत नाहीं अर विशेष स्वलक्षण है सो वचनके अगोचर है तौ ऐसे वचन तो तिनके मतमैं सर्व ही मिथ्या ठहरै। अ[illegible] । बिना मत कैसे थापै है तातैं तिनका मत भी झूठा ही है ॥३१॥

आगैं वादी कहे—जो पृथक्त्व—एकांत निर्णय नाहीं तातैं अद्वैत एकांतकी तरह यह भी मति होहु। किंतु तिन दोऊनका एकरूप एकांत श्रेष्ठ है ऐसैं मानते वादीकूं तैसैं सर्वथा 'अवक्तव्यतत्त्व है' ऐसैं आचार्य कहै हैं—

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ३२ ॥

अर्थ—जे स्याद्वादनयके विद्वेषी हैं तिनके जैसैं अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, अनेकत्व, परस्पर विरोधतैं नाहीं तिष्ठै हैं तैसैं ही पृथक्त्व, अपृथक्त्वभाव भी परस्पर विरोधस्वरूप हैं सो एकस्वरूप नाहीं ठहरै हैं जातैं यह भी प्रतिषेधस्वरूप है। जो दोय विरुद्ध धर्मरूप होय सो सर्वथा एकान्तपक्षमैं एकरूप न ठहरैं। बहुरि जो सर्वथा अवक्तव्यतत्त्व मानैं ताकै भी "तत्त्व अवक्तव्य है" ऐसा वचन भी कहना युक्त न होय। तातैं अवक्तव्य एकांत मानना भी श्रेष्ठ नाहीं ॥ ३२ ॥

आगैं एकत्व आदिक एकांतके निराकरणकी सामर्थ्यतैं अनेकांत-तत्त्व सिद्ध भया तोहू तिसके ज्ञानकी प्राप्ति दृढ करनेकै अर्थ तथा कोई अनेकांततत्त्वविषैं अन्य प्रकार आशङ्का करै ताकै निराकरणके अर्थ, तिसके एकत्वानेकत्वके सप्तभंग प्रकट करनेके इच्छुक आचार्य तिसके मूल दोय भंगस्वरूपकूं जीवादिवस्तुके कहै हैं—

अनपेक्षे पृथक्त्वैक्ये ह्यवस्तु द्वयमयोगत।
तदैक्यस्य पृथक्त्वस्य च स्वभेदैः साधनं यथा ॥ ३३ ॥

अर्थ—हि कहिये निश्चयतैं पृथक्त्व अर एकत्व हैं ते परस्पर अपेक्षारहित होय तौ दोऊ ही अवस्तु ठहरैं [जातैं अवस्तु ठहरै] जातैं दोऊके अवस्तुपणाका साधक परस्पर निरपेक्षपणा हेतु है। एकत्वकी अपेक्षा विना पृथक्त्व अवस्तु है बहुरि पृथक्त्वकी अपेक्ष।

बिना एक न अवस्तु है। ऐसैं निरपेक्ष दोऊ ही अवस्तु ठहरै है। बहुरि परस्पर सापेक्ष दोऊ हेतुतैं सो ही पृथक्त्व अर एकत्व परमार्थ है, वस्तु है। यहा दृष्टान्त—जैसैं साधन कहिये हेतु ताका स्वरूप बौद्धमता पक्षधर्म, सपक्षसत्त्व, विपक्षव्यावृत्ति ऐसैं अपने तीन भेदनि-करि विशिष्ट एक मानैं है। ताकै भी अन्वय, व्यतिरेक, ये दोय भेद मानै है। तहा जो दोऊ परस्पर सापेक्षपणाहीतैं दोऊ वस्तुभूत साधन ठहरै। तैसैं ही पृथक्त्व अर ऐक्य दोऊ सापेक्ष ही वस्तुरूप है निरपेक्ष अवस्तु है। यहा कोई पूछै—जो पृथक्त्व ऐक्यके एकान्तका निषेध तो पहले किया ही था फेर यह कारिका कौन अर्थ करी ताका समाधान—जो इसका विधि-निषेध के अनुमानका प्रयोग जनावनेकू फेर स्पष्ट-करि कह्या है, परस्पर निरपेक्ष सापेक्षकै दोऊ हेतु जताये है। बहुरि साधनका उदाहरण है सर्वमतनैं साधनकू अन्वय व्यतिरेकस्वरूप मान्या है सो परस्पर सापेक्ष बिना साधन सिद्ध होय नाहीं तब अपना अपना मत कैसे सिद्ध करैं तातैं दृष्टान्त भी युक्त है। सर्वथा एकान्त मानैं किछू भी सिद्ध न होय है ॥ २३ ॥

आगै वादी आशंका करै है—जो एकपणाकी प्रतीतितैं तथा पृथक्-पणाकी प्रतीतितैं जीवादिकपदार्थनिकै एकपणा अर पृथकपणा कैसैं बनै है। एकपणा तौ प्रत्यक्ष दीखै नाहीं अर पृथकपणा सत्स्वरूप एक मानिये तौ कैसैं ठहरै ऐसैं प्रतीतिकै निर्विषयपणा आवै है। ऐसी आशंका होतैं याका विषय दिखावनेकू मनकरि स्वामी समन्तभद्र आचार्य कहै हैं—

सत्सामान्यात्तु सर्वैक्य पृथग्द्रव्यादिभेदत ।
भेदाभेदव्यवस्थायामसाधारणहेतुवत् ॥ २४ ॥

अर्थ—तु कहिये पुन परस्परसापेक्षातै तौ पहली कारिकाविषैं जनाया अर यहा फेर ताका विशेषणतैं आश्रयकरि कहे हैं। स सामान्यतैं तो सर्व जीव आदिक वस्तु है सो ऐक्य कहिये एकस्वरूप है यातैं एकपणाकी प्रतीति निर्विषय नाहीं है। बहुरि न्यारे न्यारे जीव आदिक द्रव्य है तिनके भेदतैं पृथकपणा है यातैं पृथकपणाकी प्रतीति निर्विषय नाहीं है ऐसैं भेदाभेदकी विवक्षा होते असाधारण हेतु मानिये है। सामान्य तौ अभेद विवक्षाकरि हेतु एक मानिये है। बहुरि भेद-विवक्षाकरि विशेष ताके पक्ष-धर्म आदि भेद मानिये है तैसै जानना ॥३४॥

आगै वादी शका करै है—जो एकपणा अर पृथकपणा भेद—अभेदका विवक्षातै साधे सो विवक्षा अर अविवक्षाका तौ किछु वस्तु विषय नाहीं, वक्ताकी इच्छा मात्र है। तिसके वशतै तो एकपणा, पृथकपणा ठहरै नाहा। ऐसैं माननेवाले वादीकू आचार्य कहै है—

विवक्षा चाविवक्षा च विशेष्येऽनतधर्मिणि।
यतो विशेषणस्यात्र नासतस्तैस्तदर्थिभिः ॥ ३५ ॥

अर्थ—अनत है धर्म जामैं ऐसा जो धर्मी विशेष्य कहिये विशेषण जामैं पाइये ऐसा जीव आदिक पदार्थ तामैं विवक्षा बहुरि अविवक्षा करिये है सो सत् विशेषणकी करिये है, असत् विशेषणकी न करिये है। कोई पूछै कि ऐसी विवक्षा, अविवक्षा कौन कर है? ताका उत्तर—जे एकत्व, पृथक्त्व आदि विशेषणनिके अर्थी है ते करै है। यहां विवक्षा, अविवक्षा वक्ताके पदार्थ कहने की न कहनेकी इच्छा-रूप है सो जाकू कहने की इच्छा करै सो सत्रूप—विद्यमान होय ताहीकी करै। असत् अविद्यमानका तौ न करै। सर्वथा असत्के कहनेकी इच्छा किये तिसतैं कहा अर्थ साधै। सर्वथा असत् तौ गधाके सींगकी तरह अर्थक्रियाकारि शून्य है। ऐसैं पदार्थमैं एकत्व, पृथक्त्व

आदि विशेषण सत्रूप होय तिनहीकू तिनिके अर्थीनिकी निन्दा, अभिलाषा होय है। असत्रूपकी न होय है। ऐसा जानना ॥ ३५ ॥

आगैं जो वादी एसैं कहै है कि पदार्थनिकैं परमार्थतैं भेद हा है। अभेद कहिये है सो उपचारतैं है। जो दोऊ परमार्थतैं कहिय तौ विरोधनामा दूषण आवै। बहुरि कोई अन्य एसैं कहै है-जो पदार्थनिकै परमार्थतैं अभेद हा है अर भेद कहिये है सो कल्पनामात्र है। तया दोऊ मान विरोध आव है। तिन दोऊ वादीनिकू आचार्य कह हैं—

प्रमाणगोचरौ सतौं भेदाभेदौ न सवृती।
तावेकत्रासिद्धौ ते गुणमुख्यविवक्षया ॥ ३६ ॥

अर्थ—पदार्थनिविषैं भेद अर अभेद ये दोऊ हैं ते सत्रूप परमार्थभूत है। जातैं ये प्रमाणगोचर ह—प्रमाणके विषय हैं। न सवृत्त कहिये उपचारस्वरूप नाहीं है। यहां भेदपक्ष, अभेदपक्ष, भेदाभेदपक्ष, ऐसैं तीन पक्ष कथंचित् परमार्थभूत सिद्ध करने। बहुरि हे भगवन्! तुह्मारे मतमैं भेद अर अभेद सत्यार्थरूप हैं त एकवस्तुविषैं विरुद्धरूप नाहीं। जिनके मतमैं परस्पर निरपेक्षरूप भेदाभेद है तिनहीकै विरुद्धरूप होय है जातैं सर्वथा एकान्त प्रमाणगोचर नाहीं है। बहुरि यहां प्रमाणगोचर कया सो प्रमाणका स्वरूप आगै कहेंगे ॥ ३६ ॥

एसैं इस परिच्छेदमैं कथंचित् अद्वैत है कथंचित् पृथक्त्व है एसैं मूल दोय भंग विधि प्रतिषेध कल्पनाकरि एकवस्तुविषैं अविरोध करि प्रश्नके वशतै दिखाय। शेष पंच भंगनिकी प्रक्रिया पूर्वै कही तैसैं ही जोड़नी। स्यात् एकत्व पृथक्त्व, स्यात् अवक्तव्य, स्यात् एकत्व अवक्तव्य, स्यात् पृथक्त्व अवक्तव्य, स्यात् एकत्व पृथक्त्व अवक्तव्य जानने। इनके नययोग पूर्वोक्तप्रकार लगावने ॥ ३६ ॥

चौपाइ ।

एक अनेक पक्ष एकन्त । तजै होय निजभाव जु सत ॥
यातैं स्वामि वचनतैं साधि । स्याद्वाद धारो तजि आधि ॥१॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित देवागमस्तोत्रकी
देशभाषामय वचनिकाविषै स्याद्वादस्थापनरूप
द्वितीय अधिकार समाप्त भया ।

तीसरा-परिच्छेद ।



आगैं अब नित्य, अनित्य पक्षका तीसरा परिच्छेदका प्रारंभ है ।

दोहा ।

नित्य अनित्य जु पक्षकी, कथनी का प्रारभ ।
करू नमू मगल अरथ, जिन-श्रुत-गणी अदभ ॥ १ ॥

तहा प्रथम ही अस्तित्व, नास्तित्व, एकत्व, पृथक्त्व-एकातका प्रतिषेधकरि स्थापन किया। अब याके अनतर नित्यत्व, अनित्यत्व एकान्तके निराकरणका प्रारभ है । तहा प्रथम ही नित्यत्वएकान्तविषैं दूषण दिखावैं है--

नित्यत्वैकान्तपक्षेऽपि विक्रिया नोपपद्यते ।
प्रागेव कारकाभाव' क प्रमाण क तत्फलम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—नित्यत्वैकात कहिये कूटस्थ सदा एकमा रहै ऐसे वस्तुका अभिप्राय ताका पक्ष होतैं तिस कुटस्थविषैं विक्रिया कहिये परिणमन-अवस्थातैं अन्य अवस्था होना ऐसी क्रिया तथा परिस्पद कहिये चलना-क्षेत्रतैं अन्य क्षेत्र प्राप्त होना ऐसी विविध अनेक क्रिया न बनैं । बहुरि कारक कहिये कर्ता कर्म आदिक तिनका कूटस्थमैं पहले ही अभाव है । अवस्था जाकी पलटै नाहीं तामैं कारककी प्रवृत्ति कैसे बनैं । बहुरि जब कारकका अभाव ठहरया तब प्रमाण कहां अर प्रमाणका फल प्रमिति कहा ' । जातैं प्रमाता कर्ता होय तब प्रमाण भी सभवै । अकारक प्रमाता होय नाहीं । जो काहू ही

प्रति साधन न होय सो तौ अवस्तु ठहरे तब आत्माकी भी सिद्धि न होय। ऐसैं नित्य एकान्तमैं दूषण दिखाया॥ ३७॥

अब आगैं सांख्यमतवादी कहैं हैं कि हम अव्यक्तपदार्थ कारण-रूप है ताकू सर्वथा नित्य मानैं हैं। अर कार्यरूप व्यक्तपदार्थ है ताकू अनित्य मानैं हैं तातैं क्रिया बनैं है। तहा व्यक्त कहिये जो पदार्थ काहूक निमित्ततैं छिप्या होय ताका प्रकट होना ऐसा तो अभिव्यक्ति अर नवीन अवस्था होना सो उत्पत्ति है। ऐसैं व्यक्त पदार्थकूं अनित्य मानि क्रिया होती कहैं हैं तामैं दूषण दिखावैं हैं—

प्रमाणकारकैर्व्यक्तं व्यक्तं चेदिन्द्रियार्थवत्।
ते च नित्ये क्रियार्थं किं साधोस्ते शासनाद्बहिः॥ ३८॥

अर्थ—नित्यत्वपक्षका एकान्तवादी सांख्यमती कहै—जो व्यक्त कहिये अभिव्यक्ति अर उत्पत्तिरूप हैं ते प्रमाण अर कारकनिकरि व्यक्त—प्रगट होय हैं। यहा दृष्टान्त कहैं हैं—जैसैं इन्द्रिय अपने विषयरूप पदार्थकू व्यक्त—प्रगट करे है तैसैं प्रमाणकारक व्यक्तपदार्थकू प्रगट करै है ताके निषेधकू आचार्य कहैं हैं—जो हे भगवन्! तिन नित्यत्वएकान्तवादी-निकै तौ ते प्रमाण अर कारक भी नित्य ही हैं। तातैं सर्वथा नित्य कारणनितैं अनित्य कार्य होय नाहीं। तातै ते वादी तुम्हारे साधु आसकै शासन मततैं बाह्य हैं। तिनकै क्रियार्थ कहिये अवस्था पलटनेरूप क्रिया—स्वरूपकार्य कहा सिद्ध होय? किछू भी सिद्ध न होय। जो नित्य प्रमाण कारकनितैं अभिव्यक्ति, उत्पत्तिरूप व्यक्त पदार्थनिकू प्रगट भये कहैं तो बनैं नाहीं तथा तिन व्यक्तनिके भी नित्यपणा आया चाहिये सो है नाहीं ऐसैं तिनकै नित्य एकान्तपक्षमैं क्रिया न बनैं॥ ३८॥

आगैं फेर वादी कहै—जो हम कार्य—कारणभाव मानैं हैं तातैं हमारे किछ विरुद्ध नाहीं है ताकू आचार्य कहैं हैं—यह तो बिना विचारया

सिद्धान्त है। कार्य उपज है तामैं दोय विकल्प हैं—या तौ सत्‌रूप उपजता कहना के असत्‌रूप उपजता कहना, इन दोऊ विकल्परूप पक्षमैं दूषण दिखावैं हैं—

यदि सत्सर्वथा कार्यं पुनर्नोत्पत्तुमर्हति ।
परिणामप्रकल्पेऽपि नित्यत्वैकान्तबाधिनी ॥ ३९ ॥

अर्थ—यदि कहिये जो कार्य है सो सर्वथा सत् है, कूटस्थके समान है ऐसैं कहिये जो सांख्यमती जैसैं पुरुषकूं नित्य मानै हैं तैसैं कार्य भी नित्य ठहरै—उपजने योग्य न ठहरै। बहुरि कहै कि वस्तुके अवस्थातैं अन्य अवस्था होय है ऐसैं नित्यरूप कार्य उपजै है? ताकूं कहिये—तो वस्तु परिणामी ठहरै है सो यह परिणामकी पलटनेरूप प्रकल्पति कहिये केवल कल्पना ही है सो नित्यत्व एकान्तकी बाधनेवाली है ही। बहुरि कहै कि कार्य असत्‌रूप उपजै है तौ सांख्य मतके सिद्धान्तमैं जो यह कह्या है कि असत्‌का करना असभव है सो ऐसै सिद्धान्तका विरोध आवै है। ऐसैं नित्यत्व एकान्तके वादी जे सांख्यमती आदिक तिनके कार्य उपजनेका अभाव आवै है ॥ ३९ ॥

आगैं कार्यके अभाव होनेमैं नित्यत्व एकान्तवादीनिके दोष आवै है तिनकूं प्रगट कहैं हैं—

पुण्यपापक्रिया न स्यात् प्रेत्यभावफल कुत ।
बन्धमोक्षौ च तेषां न येषां त्वं नासि नायक ॥ ४० ॥

अर्थ—हे भगवन्! जिनकै तुम अनेकान्तके उपदेशक आप्त नायक स्वामी नाहीं हो तिन सर्वथा नित्यत्वादि एकान्तवादीनिकै पुण्य-पापकी क्रिया—काय, वचन, मनकी शुभ, अशुभ प्रवृत्तिरूप तथा उपजनेस्वरूप क्रिया नाहीं बनै है ताहीतैं परलोक भी नाहीं बनै है। क्रियाका फल सुख दुःख आदि काहे तैं होय अपि तु नाहीं

अन्येष्वनन्यशब्दोऽय सवृतिर्न मृषा कथम्।
मुख्यार्थं संवृतिर्न स्याद्विना मुख्यान्न संवृति॥ ४४॥

अर्थ—यहा क्षणिकवादी बौद्ध कहै है जो अन्यनिषैं अनन्य ऐसा शब्द है सो सवृति कहिये व्यवहारमात्र उपचार करि य हैं। भावार्थ—सतानी जे क्षण हैं तिनतैं सतान जो क्षणानिके प्रवाहकी परिपाटी, ताकू ऐसैं कहिये है जो यह क्षणानिका सतान है सो ऐसे क्षण ही हैं तिनतैं अन्य सतान किछू परमार्थभूत नाहीं है। परमार्थ देखिये तब तौ क्षण अन्य ही है अर सतानतैं अनन्य कहिये हैं सो यह व्यवहार—उपचार है। ऐसैं क्षणिकवादी कहैं ताकू आचार्य कहै हैं—जो अन्यनिषैं अनन्य कहना सर्वथा ही सवृति है—उपचार है तो मृषा कहिये असत्य कैसें न होय यह तो झूठ ही है। बहुरि कहै जो सतान है सो मुख्यार्थ ही है—सत्यार्थही है तौ जो मुख्यार्थ होय सो 'सवृतिर्न' कहिये उपचार न होय है। बहुरि कहै जो सतान तो सवृति ही है। तो सवृतितै मुख्य प्रयोजन सत्यार्थ जे प्रत्यभिज्ञान आदिक ते परमार्थभूत सतानविना कैसे सवैं। जैसें माणवकनिषैं अग्निका अध्यारोप करि उपचार करिये तब माणवकतैं अग्निका कार्य तो सधै नाहीं तैसें उपचरित सतान है सो सतानतिकैं नियमका कारण न होय। बहुत सवृति उपचार है सो भी मुख्य सत्यार्थविना तो होय नाहीं। जैसें सांचा सप होय तो ताका चित्राम भी होय अर साचा सपच ही न होय तब ताकू चित्राम भी कैसें होय। बहुरि सतान परमार्थभूत न ठहरै तब क्षण जे सतानी तिनकैं सङ्ख्यापणा आवै है जातैं ये सतानी जे क्षण तिनकैं कार्य प्रति नियमका कारणपना न बनैं है न्यारे होय एक कार्य करें तब सङ्कर दोष आवै॥ ४४॥

यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्मा जनि खपुष्पवत् ।
मोपादाननियामोऽभून्माश्वास कार्यजन्मनि ॥ ४२ ॥

अर्थ—जो कार्य है सो सर्वथा असत् ही उपजै है ऐसैं मानिये तो वह कार्य आकाशके फूलकी तरह मत होहु । बहुरि उपादान आदिक कार्यके उत्पन्न होनेकू कारण हैं तिनका नियम न ठहरै । बहुरि उपादानका नियम न ठहरै तब कार्यके उपजनेका विश्वास न ठहरै । जो इस कारणतैं य.ा कार्य नियमकरि उपजैगा । जैसे यव अन उपजनेका यवबीज ही है ऐसा उपादान कारणका नियम होय तिस कारणतैं सो ही कार्य उपजनेका विश्वास ठहरै सो क्षणिकएकान्तपक्षमैं असत् कार्य मानैं तब यह नियम न ठहरै ॥ ४२ ॥

ऐसैं होतैं क्षणिकएकान्त पक्षविषैं अन्य दोष आवै हैं सो कहै है—

न हेतुफलभावादिर्न्यायादनन्वयात् ।
सन्तानान्तरवन्नैक सन्तानस्तदवत् पृथक् ॥ ४३ ॥

अर्थ—क्षणिकएकान्तपक्षविषैं हेतुभाव अर फलभाव, आदि शब्दतैं वास्य कहिये वासनायोग्य, वासक कहिये वासना देने वाला, बहुरि कार्य अर कर्मफलके सम्बन्ध अर प्रकृति आदि ये भाव नाहीं सधैं हैं । जातैं ये भाव अन्वय बिना होय नाहीं । जैसैं भिन्न अन्य सन्तान है तैसैं सन्तानी भी भिन्न ही है, ते भी अन्यसन्तानकी तरह हैं । बहुरि सन्तानी जे क्षण तिन भिन्न अन्य सन्तानकी ज्यौं सन्तान किछू वस्तु है नाहीं तिन सन्तानिनिका एकताही कू सन्तान कहिये है । ऐसैं अन्यभावतैं अन्वय बिना हेतुफलभाव आदिक न बनैं । सन्तान सन्तानीके अन्वय होय तो ही सन्तान है तिसहीके होतैं हेतुफलभावादिक बनैं है ॥ ४३ ॥

आगैं क्षणिकवादीके वचनका उत्तर आचार्य कहै है—

र्थ सर्वविकल्पनितैं रहित अवस्तु ही ठहरै है । जातैं सर्वधर्मनितैं त भया । तत्र विशेषण, विशेष्यभावतैं भी रहित भया तातैं अवस्तु भया ॥ ४६ ॥

बहुरि सत्रथा विशेष विशेषण रहित होय ताका प्रतिषेधकरना भी ने नाहीं तातैं वस्तु ही विषैं प्रतिषेध करना बनै है सो ही कहैं हैं—

द्रव्याद्यन्तरभावेन निषेधःसञ्जिनःसतः ।
अमत्रेदो न भावस्तु स्थान विधिनिषेधयोः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जो सत्तासहित सज्ञी कहिये सज्ञावान पदार्थ है ताहीका द्रव्यान्तर, क्षेत्रान्तर, काळान्तर भावान्तर इनकरि अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल भावनिकी अपेक्षा निषेध कीजिये है । बहुरि अमत्तारूपका तौ निषेध सभवे नाहीं सर्वथा अवस्तु तौ प्रतिषेधका विषय नाहीं । जातैं असत् भेदरूपहै सो तो अवस्तु है, सो तो विधि, निषेधका स्थानही नाहीं है । कथचित् सत् विशेष पदार्थ ही विधि अर निषेधका आधार है । तातैं ऐसा आया कि अन्य वादीनें मान्या जो सर्व धर्मनिकरि रहित तत्त्व सो अवस्तु है ॥ ४७ ॥

सो पदार्थ अवक्तव्य है ऐसा कहैं हैं—

अवस्त्वनभिलाप्य स्यात्
नि पर्ययात् ॥४८ ॥

आगें क्षणिकवादी बौद्धमती कहैं हैं जो संतान परमार्थभूत कहिये तो एक संतान संतानीनि तैं भिन्न है ? अथवा अभिन्न है ? या भिन्नाभिन्नरूप है ? अथवा दोऊ भावनितैं रहित है ? ऐसा सिद्ध न होय है। तातैं ऐसें है सो कहैं हैं—

चतुष्कोटेर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्तयोगत.।
तत्वान्यत्वमवाच्य च तयो' सतानतद्वतो' ॥ ४५ ॥

अर्थ—क्षणिकवादी बौद्ध ऐसें कहैं जो संतान अर संतानी दोऊ सत्‌रूप हैं ? कि असत्‌रूप हैं ? अथवा सत् असत् इन दोऊरूप है ? या दोऊरूप नाहीं हैं ?। ऐसें सर्व हा धर्मनिविषैं इनचार विकल्परूप वचनकें कहनेका अयोग है। किछू कह्या जाता नाहीं। ऐसें ही संतान, संतानीकें भी तत्पना, अन्यपना कहनेका अयोग है। जो वस्तुकू धर्मनितैं अनन्य कहिये तो वस्तुमात्रही ठहरै। बहुरि वस्तुतैं अन्य कहिये तो इस वस्तुका यह धर्म है ऐसें कहना न बनें। दोऊ कहिये तो दोऊ दोष आवैं। दोऊ रहित कहिये तो वस्तु नि स्वभाव ठहरै। यातैं संतान, संतानीकें तत्व, अन्यत्व पना अवाक्तव्य ही सिद्ध होय है ॥ ४५ ॥

ऐसे बौद्ध कहैं हैं ताकू आचार्य कहैं हैं जो ऐसें कहने वालें कू ऐसे कहना—

अवक्तव्यचतुष्कोटिर्विकल्पोपि न कथ्यता।
असर्वान्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥ ४६ ॥

अर्थ— क्षणिकवादीकू आचार्य कहैं हैं जो सर्वधर्मनिविषैं चार कोटिके विकल्प कहनेका वचन अयोगहै तौ चार कोटिका विकल्प अवक्तव्य है ये वचन भी मत कहो। बहुरि यदि किछू ही न कहना — प्रतीति उपजोवनका भी अयोग आवै। बहुरि ऐसें होतैं

धर्म अवक्तव्य हैं तौऊ परके जतावनेकूं उपचाररूप वचनकरि 'अवक्तव्य, ऐसा वचन कहिये है। ता वादीकूं कहिए कि अवक्तव्य कैसैं है ? स्वरूपकरि अवक्तव्य है ? कि पररूप करि है ?, कि दोऊरूप करि है। कि तत्वस्वरूप करि है ?, या मृषास्वरूपकरि है ? ऐसैं विचारिये तो कोई भी पक्ष न ठहरै है। जो स्वरूपकरि अवक्तव्य कहे तो अवक्तव्य कैसैं ? जो अपना रूप है सो कहनेमे आवै है। बहुरि पररूपकरि अवक्तव्य है तो स्वरूपकरि वक्तव्य ही ठहरै। बहुरि दोऊ पक्ष माननेमैं दोऊ दूषण आवैं हैं। बहुरि तत्वकरि अवक्तव्य कहै तो व्यवहारकरि वक्तव्य कहना ठहरै। अर मृषापनाकरि अवक्तव्य कहना न कहना तुल्य ही है। ऐसैं बहुत कहने तै कहा ? सर्वथा अवक्तव्य कहनेमैं तो अवक्तव्य है ऐसा कहना भी न बनै है तब अन्यकूं प्रतीति उपजावनेका अयोग है ॥ ५० ॥

आगैं सर्वथा अवक्तव्य कहनेवाले वादीकूं कहैं हैं कि अवक्तव्य कैसैं कहे है ? ऐसैं पूछकर दोष दिखावैं हैं—

अशक्यत्वादवाच्य किमभावात्किमनोधतः ।
आद्यन्तोक्तिद्वय न स्यात् किं व्याजेनोच्यतास्फुटम् ॥५०॥

अर्थ—अवक्तव्यवादीकूं कहै है जो तू अवक्तव्य कहै है। सो अशक्यत्वात् कहिये तेरे कहनेकी सामर्थ्य नाहीं है तिसपनाकरि कहै है। कि अभाव है तातैं अवक्तव्य कहै है। कि अनोधत कहिये तेरे तत्वका ज्ञान नाहीं है तातैं अवक्तव्य कहै है। ऐसैं तीन पक्ष पूछे। इन सिवाय अन्य पक्ष कहै तो इनहीमैं अन्तर्भूत होय हैं। तहा आदिका पक्षतो अशक्यपना अर अतका अनोध, ये दोऊपक्ष तो बनै नाहीं हैं। तातैं क्षणिक मतका आप्त बुद्ध सुगतकैं सर्वज्ञपना कहैं हैं तथा क्षमा, मैत्री, ध्यान, दान, वीर्य, शील, प्रज्ञा, करुणा, उपाय प्रमोद, स्वरूप दश बल

है सो सर्व धर्मनिकरि रहितकू नाही कहैं है। सत्, असत् इत्यादि अनेकान्तात्मकवू वस्तु कहैं है। सो ऐसें होतें द्रव्य, क्षेत्र, काल, अपेक्षा प्रक्रियाके विपर्ययकू वशतैं वस्तुकौं ही अवस्तु कहैं हौं। बहुरि सर्वथा एकान्तकरि सर्व धर्मनिकरि रहित ताकू अवस्तु माना है सो परवादीका कल्पनाका अपेक्षा लेकर कहनाहै। परमार्थतैं जो सर्व धर्मनिकरि रहित है तातैं अवस्तु ह ऐसा कहनाभी हमारें नाहीं है। हमारें यहां ऐसें ह— जैसें घटकू अन्य घटकी अपक्षा अघट कहिये तैसें अन्य वस्तुकौं ही अवस्तु कहिये यामें विरुद्ध नाहीं है। जैसें काहूने कह्याकि 'अब्राह्मणकू ल्याओ, तहाँ जानना कि ब्राह्मणतैं अन्य, क्षत्रियादिकू बुलावै है। तहा ब्राह्मणका सर्वथा अभाव न कहै ह। भावहीकू अपेक्षातैं अभाव कहिये। तैसें ही वस्तुकूं अवस्तु कहना अपेक्षातै है। जो सर्वथा सर्व धर्मनितैं रहित ह सा वस्तु तो अवक्तव्य हा है एसें जानना॥ ४८॥

आगैं क्षणिकवादीनिकू किछु विशेषकरि दूषण दिखावं हैं—

सर्वान्ताश्चेदवक्तव्यास्तेषा किं वचन पुन ।
सवृतिश्चेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥ ४९ ॥

अर्थ—अन्यवादानिकैं जो 'सर्वान्ता, कहिये सर्व धर्म हैं ते अवक्तव्य ह। तिनकैं धर्मके उपदेशरूप तथा अपने तत्वका साधनरूप परके दूषणरूप वचन कहा (क्या) हैं ? अपितु किछुभी नाहीं तब मौन ही सिद्ध भया। बहुरि कहै जो सवृति कहिये व्यवहारके प्रवर्तनकू उपचाररूप वचन हैं। ताकू एसें कहिये। कि परमार्थसे विपर्यय हैं उपचार है सो तो मिथ्या है, असत्य है। बहुरि फेर वादि कहे जो कोई मौनी ऐसें कहै कि 'मेरे सदा मौन है, वाका ऐसा कहना मौनतैं विरोधी है तो भी अन्यकू जनावनेकू कहिये सो उपचार है। तैसें सर्व

उपज्या तातैं हन्या। बहुरि जो चित् हिंसनेका अभिप्राय करनेवाला चितूतैं तथा हिंसनेवाले चितूतैं ऐसैं दोऊनतैं अन्य उपज्या ता चितकैं हिंसाका फल बंध था सो भया। बहुरि जिसके बंध भया सो तो नष्ट भया तब अन्यचित् सो बंधतैं छूट्या।। ऐसैं हिंसाका अभिप्राय है सो अन्यनैं किया हिंसा अन्यनैं करी, अन्य बँध्या अर अन्य छूट्या ऐसैं कियेका नाश अर बिना किये कहनेका प्रसंग आवै है सो हास्यका स्थान है। बहुरि सतान तथा वासना कहै तो परमार्थतैं यह भी क्षणिकवादिकैं नाहीं बनै है बहुरि स्याद्वादीकैं कथंचित् सर्वभाव निर्बाध सभवै है॥ ५१॥

आगैं क्षणिक वादीनिकैं इसही अर्थकू विशेषकरि कहि दूषण दिखावैं हैं—

अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसाहेतुर्न हिंसकः।
चित्तसंततिनाशश्च मोक्षो नाष्टाङ्गहेतुकः॥ ५२॥

अर्थ—क्षणक्षय एकान्तवादी नाशकू अहेतुक कहैं हैं। जो वस्तु बिनसै है सो स्वयमेव बिना हेतु बिनसै है। सो ऐसा कहते हैं तो जो हिंसा करनेवाला हिंसक है सो हिंसाका हेतु न ठहस्या। बहुरि चित्तसंतानका मूलतैं नाश होना सो मोक्ष मानैं है ताकू आठअंग हेतुतैं भया कहै है सो न ठहरै। मोक्षका अष्टाङ्गहेतु सम्यक्त्व, सज्ञासज्ञी, वचनकायका व्यापार, अन्तर्व्यायाम, अजीव, स्मृति, ध्यान और समाधि ये हैं। तहा सम्यक्त्व कहिये बुद्ध धर्मका अंगीकार करना, संज्ञासज्ञी कहिये वस्तुका नाम जानना, वचन कायका व्यापार, अन्तर्व्यायाम कहिये श्वासोश्वास पवनका निरोध करना, अजीव कहिये जीवका अभाव, स्मृति कहिये पिटकत्रय शास्त्रकी चिंता, ध्यान कहिये

मानैं है ता बुद्धकैं अज्ञान, असमर्थता कैसैं बनै ? । बहुरि मध्यम पक्ष 'अभाव, है सो बौद्धमतीकूं कहैं है कि अव्याज कहिये छलकरि कहा (क्या) ? प्रगटपनैं तत्त्वका सर्वथा अभाव है ऐसैं स्पष्टकरि कहो किंतु एसैं कहैं ठीकपना न आवै है । मायाचारी करन अनाप्तपनाका प्रसग आवेगा । ऐसैं सर्वथा अभाव कहतैं अवक्तव्य अर शून्य मतमैं किछू विशेष है नाहीं । ऐसैं बौद्धमतकैं शून्यमतका प्रसग आवै है । बहुरि यदि ऐसा कहैं कि क्षणक्षय तत्त्वका सकत किया जाता नाहीं तातैं अवक्तव्य है । ताकूं कहिये है वस्तुका क्षणक्षय मात्र स्वरूप नाहीं सामान्य विशेष स्वरूप तथा नित्य अनित्यरूप जात्यंतर है तातैं कथचित् सकेत करना सभवै है । प्रत्यक्षगम्य स्वलक्षणविषैं संकेत करना नाहीं है तौऊ विकल्प प्रमाणकरि गम्य है ताविषैं सकेत होय ही है । जो वचनगोचर धर्म है तिनके विषैं सकेत न संभवे ही है ऐसैं सर्वथा अवक्तव्यवादी जो क्षणिकवादी ताकैं सून्यवाद आवै है ।

आगैं कहैं हैं कि याहीतैं क्षणक्षय एकान्तपक्षमैं किये कार्यका तो नाश अर विना कियेका होना प्रसग आवै है । सो ऐसा तो दूषण सका ठिकाना है—

हिनस्त्यनभिसधात् न हिनस्त्यभिसधिमत् ।
बद्धयते तद्व्यापेत चित्त बद्ध न मुच्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—निरन्वयक्षणिक चित् है सो जो चित् प्राणीके धातनेका अभिप्राय करै है कि मैं या प्राणीकूं घातू ऐसा अभिसधिवाला चित् तौ नाहीं हनै है—नाहीं घाते है । जातैं जा क्षणमें अभिप्राय किया ताही क्षणमैं वह चित् है पीछैं अन्यचित् उत्पन्न हुआ । बहुरि चित प्राणीके घातनेका अभिप्राय न करै सो अनभिसधान चित् प्राणीकूं हनै है—घातै है । जातैं जानैं अभिप्राय किया था सो विनासि गया पीछैं अन्यचित्

अर्थ—स्कधा —रूप, वेदना, विज्ञान, सज्ञा, सस्कार ये पाच स्कध हैं। तहा स्पर्श, रस, गध, वर्णके परमाणु तो रूपस्कध हैं। बहुरि सविल्पक, निर्विकल्पक ज्ञान विज्ञान स्कध हैं। अर वस्तुनिके नाम सो सज्ञास्कध हैं तथा ज्ञान, पुण्य पापकी वासना है सो सस्कार स्कध है। तिनके सतानकू सतति कहिये सो यह स्कधसतति है ते असस्कृतहैं अकार्यरूप हैं जातैं इनकैं सघातिपना है—उपचारकरि बुद्धि-कल्पित हैं। बौद्धमती परमाणुनिकू सर्वथा भिन्न ही मानै है। सो सतान समुदाय आदिहैं ते कल्पनामात्र हैं तातैं तिन स्कध सततिनिकै स्थिति उत्पत्ति, विनाश नाहीं सभवै है। जातैं ये स्कध सतति विना किये हैं कार्य कारणरूप नाहीं। बुद्धिकल्पितकैं काहेका स्थिति, उत्पत्ति विनाश होय ये गधाका सींगकी तरह कल्पित हैं। तातैं पहली कारिकामै जो कह्या था कि निरूप कार्यके लिए हेतुका व्यापार मानिये है सो कहना भी बिगडै है। स्कधसतान ही झूठे तब कौन रह्या है जाके अर्थ हेतुका व्यापार मानिये। ऐसैं क्षणिक एकातपक्ष है सो श्रेष्ठ नाहीं है जैसें नित्य एकातपक्ष श्रेष्ठ नाहीं तैसैं यह भी परीक्षा किये सत्राध है ॥ ५४ ॥

आगैं नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोऊ पक्ष सर्वथा एकातकरि मानेतैं दूषण दिखावैं है—

विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ५५ ॥

अर्थ—जे स्याद्वादन्यायके विद्वेषी है तिनकैं उभय कहिये नित्यत्व, अनित्यत्व ये दोऊ पक्ष एकस्वरूप नाहीं बनैं हैं जातैं दोऊ पक्षमै विरोध हैं जैसैं जीना, मरना इनमैं विरोध है। तातैं एकस्वरूप होय नाहीं। बहुरि विरोध दूषणके भयतैं अवाच्यता कहिये अवक्तव्य एकान्त मानै

एकाग्र होना, समाधि कहिये लय होना ऐसें अहेतुक मोक्ष कहना न बनैं। ऐसें नाशकू हेतु विना कहनेमें दूषण है ॥ ५२ ॥

आगैं बौद्ध कहै कि विरूपकार्य, विसदृशकार्यके अर्थ हेतु मानिये है ताकू दूषण दिखावैं हैं—

विरूपकार्यारंभाय यदि हेतु समागम ।
आश्रयिभ्यामनन्योऽसाविशेषादयुक्तवत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—विरूप काय कहिये हिंसा अर बंध, मोक्ष, ताके आरंभके अर्थ हिंसक अर सम्यक्त्व आदिक अष्टाङ्गहेतुका समागम कहिये व्यापार मानिये है ऐसें बौद्ध कहै ताकू आचार्य कहैं है। कि यह हेतु माया सो अपने आश्रयी जे नाश अर उत्पाद तिनतैं अन्य नाही है। अनन्य कहिये अभेदरूप है। जो नाशका कारण सो ही उत्पादका कारण है। यामें विशेष नाहीं। ऐसें अयुक्त कहिये भाव, भावं अभेदरूप होय तिन तै तिनका कारण भी भिन्न न होय तैसें पहले आकारका विनाश अर उत्तर आकारक उत्पादका कारण एक ही है तातैं जो उत्पादकू तो हेतुतैं मानैं अर नाशकू अहेतुक मानैं सो कैसें बनैं। जैसे मुद्गर घटके नाशका कारण है सो ही कपालके उत्पादका कारण है। उत्पाद, नाश दोऊ ही हेतु विना नाहीं ॥ ५३ ॥

आगैं बौद्ध मतीकू कहैं हैं कि तिहारे क्षणतैं परमाणु उपजै है। तुम स्कंधसंतति मानू हो तो उपजै है। जो कहोगे कि परमाणु उपजै है सो यामें तो हेतु, फलभावका विरोध आवैगा जैसें विनाश है विना मानू हो तैसें उत्पाद भी हेतु विना मानो। बहुरि जो स्कंधसंतिकू उपज्या मानू हो ता तामें दूषण है सो दिखावैं हैं—

स्कन्धा सततयैव सद्वृत्तित्वादसंस्कृता ।
स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषा न स्यु खरविषाणवत् ॥ ५४

ऐसा प्रत्यभिज्ञान वस्तुकू कथंचित् नित्य साधै है। बहुरि सर्व जीवादिक वस्तु हैं सो कथंचित् क्षणिक हैं जातैं कालका भेद है यहा भी प्रत्यभिज्ञान प्रमाण ही तैं सिद्ध है जातैं क्षणिकविनाभी प्रत्यभिज्ञान होय नाहीं यह क्षणिक भी प्रत्यभिज्ञानहीका विषय है। जातैं पूर्व उत्तर पर्यायस्वरूप कालभेद न मानिये तो बुद्धिके सचारका दोष आवै। काल भेदविना बुद्धिका सचार कैसै करिए। पूर्वदशाका स्मरण अर वर्तमानदशा का दर्शनरूप बुद्धिका सचारण पूर्वोत्तर पर्यायविषैं होय है। तबही प्रत्यभिज्ञान उपजै है। ऐसैं कथंचित् अनित्यत्व एकवस्तुविषैं सिद्ध होय है। तामैं विरोध आदि दूषण भी नाहीं हैं। दूषण आवै है सो सर्वथा एकान्त पक्षमें ही आवै है ॥ ५६ ॥

आगैं, भगवान मानू फेर पूछी कि जीव आदि वस्तुकें उत्पादविनाश रहित स्थितिमात्र तो कैसे स्वरूप करि है? अर विनाश, उत्पाद कैसै स्वरूपकरि हैं? बहुरि त्रयात्मक एक वस्तु कौन प्रकार सिद्ध होय है? ऐसैं पूछने पर मानू आचार्य कहै हैं—

न सामान्यात्मनोदेति न व्येति व्यक्तमन्वयात् ॥
व्येत्युदेति विशेषात्ते सहैकत्रोदयादि सत् ॥५७॥

अर्थ—वस्तु है सो सामान्यस्वरूपकरि तौ न उदेति कहिये उपजै नाहीं है—उत्पाद न होय। बहुरि 'न व्येति, कहिये विनशै नाही है जातैं व्यक्त कहिये प्रकट अन्वयस्वरूप है। बहुरि विशेषस्वरूपकरि विनशै भी है, उपजै भी है। बहुरि युगपत् एकवस्तुविषैं देखिये तब उपजै है, विनशै भी है अर स्थिर भी है ऐसैं तीन भावनिरूप सत् वस्तु है। तहा सामान्य स्वरूप तौ सर्व अवस्थामें साधारणस्वभाव है ताकू अन्वयरूप द्रव्य कहिये है। बहुरि विशेष व्यतिरेकरूप पर्याय है। बहुरि यहा 'व्यक्त, ऐसा विशेषण है सो प्रकट प्रमाणकरि अनाश्रित

ता यह भी अयुक्त है। जातैं 'अनाय है, ऐसी उक्ति कहिये कहना सो भी न बनैं। ऐसैं कहैं भी अवक्तव्यपनेका एकान्त तौ न रह्या ॥५५॥

ऐसैं नित्य आदि एकान्त टहऱ्या तातैं सामर्थ्यवश अनेकान्तकी सिद्धि भई। तौऊ शून्यवादीके आशयकू नष्टकरनेकू तथा अनेकान्तके ज्ञानकी दृढताके अथ स्याद्वादन्यायका अनुसारकरि नित्यत्वादि अनेकान्तकू आचार्य दिखावै हैं—

नित्य तत् प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा ।
क्षणिक कालभेदात्ते बुद्धयसचर दोषत ॥५६॥

अर्थ—हे भगवन्! ते, कहिये तुम जो हौ अरहंत, स्याद्वादन्यायके नायक तिनकें सर्व जीव आदिक तत्व हैं सो स्यात् कहिये कथंचित् नित्य ही हैं जातैं प्रत्यभिनायमान हैं। प्रत्यभिज्ञान प्रमाणतैं पूर्व, उत्तर दशा विषै 'यह सो ही है जो पूर्वै देख्या था, ऐसैं एकपना सिद्ध होय है सोही नित्य है। बहुरि यह प्रत्यभिज्ञान 'अकस्मात्, कहिये निर्विषय नाहीं। जातैं जाका अविछेदकरि अनुभव है। बहुरि क्षणिकवादी कहैं जो पूर्वोत्तरदशाविषैं सदृशभाव है ताकूं एकत्व मानना भ्रम है। ताके अर्थि कहिये हैं, जो पूर्वोत्तरकालकी दोऊ दशामें अन्य अन्य हैं ऐसा अनुभव काहू प्रमाणतैं सिद्ध होय नाहीं। तातैं एकत्व प्रत्यभिज्ञान ही सत्यार्थ सिद्ध होय है। बहुरि कहैं हैं जो यह प्रत्यभिज्ञान अकस्मात् नाहीं है जातैं बुद्धिके असचारका दोष आवै है। जो या प्रत्यभिज्ञानका विषय नित्यपना न होय तो अविच्छेदरूप अनुभव न होय तब बुद्धिका सचार कैसें होय? निरन्वयविनाश होय तब एकक छोडि दूसरे पै बुद्धि कैसैं जाय। जो मैं पहले देख्या था सो ही मैं वर्तमान कालमें ताहीकू देखू हू ऐसैं एक द्रव्य बिना पूर्वोत्तर दशामें बुद्धिका सचार न होय। तातैं प्रत्यभिज्ञान निर्विषय नाहीं है। तातैं

ही है तैसैं कथंचित् अभेदरूप भी है एसैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप वस्तु सिद्ध होय है। इन तीनू भावनिकैं परस्पर अपेक्षा न होय तो तीनू ही अवस्तु ठहरैं तब वस्तु सिद्ध न होय केवल उत्पाद ही मानिये तो नवीन वस्तु उपज्या ठहरै सो बनै नाहीं। बहुरि केवल विनाश ही मानिये तो तिस हीका फेर उपजना न ठहरै तब शून्यका प्रसंग आवै। बहुरि केवल स्थिति मानिये तो उत्पाद, विनाश हैं ते ही न ठहरैं। ऐसैं प्रत्यक्षविरोध आवै। तातैं कथंचित् त्रयात्मक वस्तु मानना युक्त है॥ ५८॥

आगैं इस अर्थकी प्रतीतिके समर्थनकूं लौकिक जनकैं प्रसिद्ध दृष्टान्त कहैं हैं—

घटमौलिसुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम्।
शोकप्रमोदमाध्यस्थ्यं जनो याति सहेतुकम्॥ ५९॥

अर्थ—घट, मौलि, सुवर्ण इनके अर्थी जो पुरुष हैं सो घटकूं तोडि मौलि करनेमैं शोक, प्रमोद, माध्यस्थ्यकूं प्राप्त होय हैं। सो यह सब हेतु सहित है। जो घटका अर्थी है ताकैं तो घटका विनाश होनेतैं शोक भया सो शोकका कारण घटका विनाश भया। बहुरि घटकूं तोडि मौलि (मुकुट) बनानेमैं मौलिके अर्थी पुरुषकैं हर्ष भया सो यहां हर्षका कारण मौलिका उत्पाद भया। बहुरि जो सुवर्णका अर्थी है ताकैं शोक अर हर्ष न भया। माध्यस्थ रह्या। जातैं घट भी सुवर्ण था मौलि भी सुवर्ण ही है ऐसैं माध्यस्थ्यका कारण सुवर्णकी स्थिति भई। ऐसैं लौकिक जनकैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य स्वरूप वस्तु है सो प्रतीतिभेदतैं

॥ ५९ ॥

[illegible]चूर जैन मती हैं तिनकैं भी गति भेदतैं ऐसैं ही

सामान्यविशेषरूप ऐसैं ही सिद्ध होय है, ऐसैं जनावै है। बहुरि युगपत् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनू क्या सो प्रमाणका विषय है सत्का लक्षण ऐसाही सिद्ध होय है ॥ ५७ ॥

आगैं अन्य वादी कहै हैं जो सत्का लक्षण त्रयात्मक किया सो कै तो सत् नित्य ही बनै या उपजना, विनशनारूप अनित्य ही बनै। नित्यानित्यमैं तो विरोध है। तातैं जो उत्पाद अर व्ययरूप होय है सो पूर्वं याका किछू सत् नाहीं है नवीन ही उपजै है ऐसैं कहना। जो नित्यतैं पूर्व होय ताका तो नाश कैसैं होय ? । अर पूर्व अनित्य ही था तो कार्य उपजा या विनशि गया ताके नवीन भये कार्यमैं सत् कैसैं कहिये ? । ऐसैं तर्क करै ताकू आचार्य कहै हैं जो कार्यका उत्पत्तिके पहले तो भावस्वभाव ही है। सो जसैं है तैसे दिखावै हैं—

कार्योत्पाद क्षयो हेतुर्नियमाल्लक्षणात्पृथक् ।
न तौ जात्याद्यवस्थानादनपेक्षा खपुष्पवत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—हेतु कहिये उपादान कारण ताका क्षय कहिये विनाश है सा ही कार्यका उत्पाद है। जातैं हेतुके नियमतैं कार्यका उपजना है। जो कार्यतैं सर्वथा अन्य है तातैं नियम नाहीं है। बहुरि ते उत्पाद, विनाश भिन्नलक्षणतैं न्यारे न्यारे हैं—कथंचित् भेदरूप हैं। बहुरि जाति आदिक अवस्थानतैं भिन्न नाहीं हैं—कथंचित् अभेदरूप हैं। बहुरि परस्पर अपेक्षा रहित होय तो असत्तु है—आकाशके पुष्पतुल्य है। यहां, जैसैं कपालका उत्पाद अर घटका विनाशके हेतुका नियम है। तातैं हेतुके नियमतैं कार्यका उत्पाद है सा ही पूर्व आकारका विनाश है। अर दोऊ लक्षणभेद है ही। उत्पादका स्वरूप अन्य अर विनाशका स्वरूप अन्य ऐसैं लक्षणभेदतैं भेद है ही। बहुरि सर्वथा भेद ही नाहीं है। जैसैं कपालका उत्पाद अर घटका विनाश ये दोऊ मृत्तिकास्वरूप

अथ चतुर्थ-परिच्छेद ।



दोहा ।

भेदआदि एकान्त तम, दूरि कियो जिनसूर ॥
वचन किरणतैं तास पद, नमू करम निरसूर ॥ १ ॥

अब यहा वैशेषिकमती भेद एतान्त पक्षकरि अपना मत थापै । ताका पूर्व पक्ष ऐसैं है—

कार्यकारणनानात्व गुणगुण्यन्यतापि च ।
सामान्यतद्वन्यत्व चैकान्तेन यदीष्यते ॥ ६१ ॥

अर्थ—कार्यकैं अर कारणकैं नानापना, बहुरि गुणकैं अर गुणीकैं अन्यता कहिये भेदरूप नानापना, बहुरि सामान्यकैं अर 'तद्वत्' कहिये विशेषनिकैं अन्यपना है ऐसैं जो एकान्तकरि मानिये । ऐसा वैशेषिकमती पूर्वपक्ष करै ताका उत्तर अगली कारिकामैं होगा ।

यहा कार्यके ग्रहणतैं तो कर्मका तथा अवयवीका अर अनित्यगुण तथा प्रध्वसाभावका ग्रहण है । बहुरि कारणके कहनेतैं, समवायी समवाय तथा प्रध्वसके निमित्तका ग्रहण है । बहुरि गुणतैं नित्यगुणका ग्रहण है अर-गुणी कहने तैं गुणके आश्रयरूप द्रव्यका ग्रहण है । बहुरि सामान्यके ग्रहणतैं पर, अपर जाति रूप समान परिणामका ग्रहण है । तथैव, तद्वत्, वचनतैं अर्थरूप विशेषनिका ग्रहण है । ऐसैं वैशेषिकमती माने है जो इन सबकैं भेद ही है, ये नाना ही हैं, अभेद नाहीं हैं । ऐसा एकान्तकरि माने है ताकू आचार्य कहैं हैं कि ऐसैं माननेतैं दूषण आवै है ॥६१

पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोऽत्ति दधिव्रतः ।
अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्व त्रयात्मकम् ॥ ६० ॥

अर्थ—जाकें ऐसा व्रत होय कि मैं आज दुग्ध ही ल्यूंगा सो तो दही नाहीं खाय है । बहुरि जाकें ऐसा व्रत होय कि मैं आज दही ही खाऊंगा सो वो दूध नाहीं पीवे है । बहुरि जा पुरुषकें गोरस न लेनेका व्रत है सो दोऊ ही नाहीं लेवे है । तातैं तत्व है सो त्रयात्मक है ॥

भावार्थ—गोरस ऐसा दूध अर दही इन दोऊ ही कू कहिये है । सो वस्तु विचारिये तब तीनोंमें अभेद भी है जातैं दोऊ एक गोरसस्व रूप ही हैं । बहुरि भेद भी है । तातैं व्रती जन हैं ते ऐसैं मानैं हैं जो दूध खानेकी प्रतिज्ञा लेवे तब दही यद्यपि गोरस ही है तो भी तातैं भेद मानि न खाय है । तैसैं ही दही खानेकी प्रतिज्ञा लेवे तब दूधकू भेद मानि न खाय है । बहुरि जो दोऊके न खाने की प्रतिज्ञा लेवे सो दोऊ ही न खाय । ऐसैं व्रती भी भेदाभेदरूप वस्तु मानें हैं । तातैं ऐसैं ही त्रयात्मक वस्तु प्रतीतिसिद्ध है । तातैं कथंचित् नित्य ही है, कथंचित् अनित्य ही है । ऐसैं ही कथंचित् नित्यानित्य ही है, कथंचित् अवक्तव्य ही है कथंचित् नित्य अवक्तव्य ही है । कथंचित् अनित्य अवक्तव्य ही है तथा कथंचित् नित्यानित्य अवक्तव्य ही है । ऐसैं यथायोग्य सप्तभंगि जोड़नी । जैसैं सत् आदिपर जोड़ी थी तैसैं ही नय लगावनी ॥ ६० ॥

चौपाइ ।

नित्य आदि एकान्त यथाय, प्राणी भवमें भ्रमण कराय ।
तिनके उधरनकू जिनबैन, अनेकान्तमय वरनें ऐन ॥ १ ॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम-स्तोत्रकी देशभाषामय वचनिकाविषैं स्याद्वादस्थापनरूप तृतीय अधिकार समाप्त भया ।

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकैं अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरै। जैसैं दोय द्रव्य जुदें युतसिद्धकै वृत्ति होय तैसैं ठहरैं। पर्वतकैं अर वृक्षादिकनैं भेदरूप वृत्ति है तैसें ठहरै सो एमैं है नाहीं। अवयवी आदिकैं अर अवयव आदिकैं तो कथंचित् भेद है। बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनके समानदेशता कहिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरै अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थकै एकदेशमें रहना कैसें बनैं। ऐसें सर्वथा भेदपक्षमें दूषण आवै है॥ ६३॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करैं हैं—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्य समवायिनाम्।
इत्ययुक्तः स सम्बधो न युक्तः समवायिभि॥ ६४॥

अर्थ— वैशेषिक कहै है कि समवायी पदार्थ है तिनकैं आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कैं देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है। समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरते है। आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करे? । ताकू आचार्य कहै हैं।

कि हे वैशेषिक! समवाया पदार्थनि करि समवाय सम्बन्ध भी तो भिन्नही है जुडया नाहीं है सो युक्त नाहीं होय है। समवाय पदार्थ जुदा था ताकू जुदे समवायी पदार्थनि तैं कोन नें जोडया (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तैं दूषणही आवै है॥ ६४॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय तो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है। अर कार्य उपजै है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकें अर कार्यकें जोड है ताकू आचार्य दूषण दिखावें हैं—

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकैं अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरै। जैसैं दोय द्रव्य जुदें युतसिद्धकैं वृत्ति होय तैसें ठहरैं। पर्वतकैं अर वृक्षादिककैं भेदरूप वृत्ति है तैसें ठहरै सो एसैं है नाहीं। अवयवी आदिकैं अर अवयव आदिकैं तो कथंचित् भेद है। बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनकैं समानदेशता कहिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरे अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थकै एकदेशमें रहना कैसें बनैं। ऐसें सर्वथा भेदपक्षमैं दूषण आवै है॥ ६३॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करें हैं—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्य समवायिनाम्।
इत्ययुक्त स सम्बधो न युक्त. समवायिभि ॥ ६४॥

अर्थ— वैशेषिक कहै है कि समवायी पदार्थ है तिनकैं आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कैं देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है। समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरते है। आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करै? ताकू आचार्य कहैं हैं।

कि हे वैशेषिक! समवायी पदार्थनि करि समवाय सम्बन्ध भी तो भिन्नही है जुड्या नाहीं है सो युक्त नाहीं होय है। समवाय पदार्थ जुदा था ताकू जुदे समवायी पदार्थनि तैं कोन नें जोड्या (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तैं दूषणही आवै है॥ ६४॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय तो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है। अर कार्य उपजै है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकैं अर कार्यकैं जोड़ है ताकू आचार्य दूषण दिखावैं हैं—

]

अर्थ—अवयवी जे कार्य द्रव्यादिक तिनकैं अवयव जे कारणादिक तिनतैं सर्वथा भेद मानिये तो देश कालका विशेष होतैं भी वृत्ति ठहरे । जैसैं दोय द्रव्य जुडें युतसिद्धकैं वृत्ति होय तैसैं ठहरैं । पर्वतकै अर वृक्षादिककै भेदरूप वृत्ति है तैसैं ठहरैं सो ऐसैं है नाहीं । अवयवी आदिकैं अर अवयव आदिकै तो कथंचित् भेद है । बहुरि मूर्तिक जे कारण, कार्य तिनकैं समानदेशता कहिये एकदेशपना, मानैं तो ये भी न ठहरै अत्यन्तभिन्न अनेक मूर्तिक पदार्थकैं एकदेशमें रहना कैसें बनैं । ऐसें सर्वथा भेदपक्षमें दूषण आवै है ॥ ६३ ॥

आगें फेर प्रश्नोत्तर करैं है—

आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्य समवायिनाम् ।
इत्ययुक्त. स सम्बधो न युक्त. समवायिभि ॥ ६४ ॥

अर्थ— वैशेषिक कहे है कि समवायी पदार्थ हैं तिनकैं आश्रय आश्रयी भाव है यातैं स्वाधीनपना नाहीं है तातैं कार्य कारणादिक कैं देशकालादिकका भेद करि वृत्ति नाहीं है । समवायी पदार्थ तो समवायके आधीन वरते है । आप ही देश कालके भेद करि वृत्ति कैसें करै ? । ताकू आचार्य कहैं हैं ।

कि हे वैशेषिक ! समवायी पदार्थनि करि समवाय सम्बन्ध भी तो भिन्नही है जुडया नाहीं है सो युक्त नाहीं होय है । समवाय पदार्थ जुदा था ताकू जुदे समवायी पदार्थनि तैं कोन नें जोडया (मिलाया)। ऐसें सर्वथा भेद मानें तै दूषणही आवै है ॥ ६४ ॥

आगैं, वैशेषिक कहै कि केवल समवाय सो सत्तासामान्यके समान नित्य ही है । अर कार्य उपजे है तब सत्ता समवायी मानिये है ऐसें समवायकैं अर कार्यकैं जोड़ है ताकू आचार्य दूषण दिखावैं हैं—

समान्य समवायश्चाप्येकैकेन समाप्ति ।
अतरेणाश्रय न स्यान्नाशोत्पादिषु सो विधि. ॥ ६५ ॥

अर्थ—सामान्य अर समवाय ये दोऊ नित्य हैं अर एक एक हैं। ते दोऊ यदि एक एक पदार्थनिपैं समस्तपनेकरि वर्तै तदि एक एक नित्यपदार्थनिमैं ही समाप्त होंय तब अन्य पदार्थमैं कौन जाय अर इन दोऊनकै अंग, अवयव मान्या नाहीं । तब अनित्य जे उपजन विनशने वाले कार्य आदि पदार्थ हैं ते सामान्य अर समवाय विना ठहरे । तब सामान्य अर समवाय ये दोऊ ही आश्रय विना न होंय तब उपजने, विनशनेवाले पदार्थनिकी कौन विधि मानिये इनका सत्व अर प्रवर्तना न ठहरे । ऐसें दोष आवै ॥ ६५ ॥

आगैं कहैं हैं कि वैशेषिकनकै परस्पर सापेक्षा न माननै तै भेदएका तमें पहले कहे ते, अर अब कहैं हैं सो दूषन आवै है—

सर्वथानभिसम्बन्ध सामान्यसमवाययो ।
ताभ्यामर्थो न सम्बन्धस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सामान्यकैं अर समवायकैं वैशेषिकनैं सर्वथा सम्बन्ध नाहीं मान्या है । बहुरि तिन दोऊनितैं भिन्न पदार्थ द्रव्य गुण, कर्म ये सम्बन्धरूप नाहीं होय है जातैं परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथाभेद मान्या है । तातैं ऐसा ठहरे है कि परस्पर अपेक्षा विना सामान्य, समवाय अर अन्य पदार्थ ये तीनूंहा आकाशके फूलकी तरह अवस्तु हैं । वैशेषिकनैं कल्पनामात्र वचनजाल किया है । ऐसें कार्य कारण, गुण गुणी, सामान्य विशेष इनकै अन्यपनेका एकान्त भेदएकान्तकी तरह श्रेष्ठ नाहीं ॥ ६६ ॥

आगैं अन्यवादी कहै । तुम कह्या तैसैं अन्यता तथा अनर्थ तो

नित्यपना है तातैं सर्व जगत्थानिविषैं अन्यपनाका अभाव है तातैं अन्यताका एकान्त है सो सदा एकस्वरूप रहै है अन्यस्वरूप कबहू न होय । ताकू आचार्य कहैं हैं—

अनन्यतैकान्तऽण्वना सघातेऽपि विभागवत् ।
असहतत्व स्याद् भूतचतुष्क भ्रान्तिरेव सा ॥ ६७ ॥

अर्थ—परमाणूनिकैं अनन्यता कहिये अन्यस्वरूप न होनेका एकान्त, होनेतैं सघात कहिये परस्पर मिल एकान्त होतैं भी विभाग कहिये पहलें न्यारे न्यारे विभागरूप थे ताकी तरह मिले नाहीं ठहरैं, जातैं मिल स्कंध स्वरूप न भये । जो मिलकरि स्कंधरूप भये मानिये तो अन्यताका एकान्त न ठहरे कदाचित् अन्यस्वरूप भये ठहरै । बहुरि स्कंधरूप न भये ठहरे । बहुरि स्कंधरूप न भये तब पृथ्वी, जल, तेज, वायु ऐसा भूतका चतुष्टय देखिये है सो भ्रांतिरूप ठहरै । जातैं भूतचतुष्क परमाणूनिका कार्य मानिये है सो भ्रम ठहरै ॥ ६७ ॥

आगैं, भूतचतुष्कके भ्रान्ति मानें दोष आय है सो दिखावैं हैं —

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्तिः कार्यलिङ्ग हि कारणम् ।
उभयाभावतस्तत्स्थ गुणजातीतरच्च न ॥ ६८ ॥

अर्थ—परमाणूनिके कार्य जो पृथ्वी आदि भूतचतुष्क तिनकू भ्रमस्वरूप मानें तैं परमाणु भी भ्रमस्वरूप ही ठहरैं हैं । जातैं कारण है सो कार्यलिंगस्वरूप है अर कार्यलिङ्गतैं ही कारणका अनुमान करिये है । कार्य भ्रम ठहरै तब ताका कारण भी भ्रमही ठहरे । बहुरि कार्य कारणस्वरूप जो भूतचतुष्क अर परमाणु इन दोऊनके अभावतैं तिनकैं विषैं तिष्ठते गुण, जाति, सत्व, क्रिया, विशेष, समवाय ये भी न ठहरैं । तातैं परमाणूनिकैं कथंचित् स्कंधरूप अन्यस्वरूपता मानना युक्त है ।

समान्य समायश्चाप्येकैकत्र समाप्ति ।
अतरेणाश्रय न स्यान्नाशोत्पादिषु को विधि ॥ ६५ ॥

अर्थ—सामान्य अर समवाय ये दोऊ नित्य है अर एक एक हैं। ते दाऊ यदि एक एक पदार्थविषैं समस्तपनेकरि वरतैं तदि एक एक नित्यपदार्थविषैं ही समाप्त होंय तब अन्य पदार्थमें कौन जाय अर इन दोऊनकैं अंश, अवयव मान्या नाहीं। तब अनित्य जे उपजने विनशने वाले काय आदि पदार्थ हैं त सामान्य अर समवाय विना ठहरे । तब सामान्य अर समवाय य दोऊ ही आश्रय विना न होंय तब उपजने, विनशनेवाले पदथनिकी कौन विधि मानिये इनका सत्व अर प्रवर्तना न ठहरै। ऐसें दोष आवै ॥ ६५ ॥

आगें कहैं हैं कि वैशेषिकके परस्पर सापेक्षा न माननै तैं भेदएका-तमें पहले कहे ते, अर अब कहे हैं सो दूषन आवै है—

सर्वथानभिसम्बन्ध सामान्यसमवाययो ।
ताभ्यामर्थो न सम्बधस्तानि त्रीणि खपुष्पवत् ॥ ६६ ॥

अर्थ—सामान्यकै अर समवायकैं वैशेषिकनैं सर्वथा सबन्ध नाहीं माया है। बहुरि तिन दोऊनितैं भिन्न पदार्थ द्रव्य गुण, कर्म : संबधरूप नाहीं होय है जातैं परस्पर अपेक्षा रहित सर्वथाभेद मान्य है। तातैं ऐसा ठहर है कि परस्पर अपेक्षा विना सामान्य, समवाय अ अन्य पदार्थ ये तीनूही आकाशके फूलका तरह अवस्तु हैं। वैशेषिक कल्पनामात्र वचनजाल किया है। ऐसें कार्य कारण, गुण गुणी, सामा विशेष इनकैं अयपनेका एकान्त भेदएकान्तकी तरह श्रेष्ठ नाहीं॥ ६६

आगें अन्यवादी कहै कि कार्यकारण आदिकैं तो तुम कह्या तै अयता तथा अनयताका एकान्त मत होहु। बहुरि परमाणूनिकैं :

नित्यपना है तातैं सर्व अवस्थानिविषैं अन्यपनाका अभाव है तातैं अनन्यताका एकान्त है सो सदा एकस्वरूप रहै है अन्यस्वरूप कबहू न होय । ताकू आचार्य कहैं हैं—

अनन्यतैकान्तेऽणूना सघातेऽपि विभागवत् ।
असहतत्व स्याद् भूतचतुष्क भ्रान्तिरेव सा ॥ ६७ ॥

अर्थ—परमाणूनिकैं अनन्यता कहिये अन्यस्वरूप न होनेका एकान्त, होनेते सघात कहिये परस्पर मिल एकान्त होतैं भी विभाग कहिये पहलैं न्यारे न्यारे विभागरूप ये ताकी तरह मिले नाहीं ठहरैं, जातैं मिल स्कंध स्वरूप न भये । जो मिलकरि स्कंधरूप भये मानिये तो अनन्यताका एकान्त न ठहरै कथंचित् अन्यस्वरूप भये ठहरै । बहुरि स्कंधरूप न भये ठहरे । बहुरि स्कंधरूप न भये तब पृथ्वी, जल, तेज, वायु ऐसा भूतका चतुष्टय देखिये है सो भ्रांतिरूप ठहर । जातैं भूतचतुष्क परमाणूनिका कार्य मानिये है सो भ्रम ठहरै ॥ ६७ ॥

आगैं, भूतचतुष्ककू भ्रांति मानें दोष आवै है सो दिखावैं हैं —

कार्यभ्रान्तेरणुभ्रान्ति कार्यलिङ्ग हि कारणम् ।
उभयाभावतस्तत्स्थ गुणजातीतरच्च न ॥ ६८ ॥

अर्थ—परमाणूनिके कार्य जो पृथ्वी आदि भूतचतुष्क तिनकू भ्रमस्वरूप मानैं तै परमाणु भी भ्रमस्वरूप ही ठहरैं हैं । जातैं कारण है सो कार्यलिंगस्वरूप है अर कार्यलिङ्गतैं ही कारणका अनुमान करिये है । कार्य भ्रम ठहरै तब ताका कारण भी भ्रमही ठहरै । बहुरि कार्य कारणस्वरूप जो भूतचतुष्क अर परमाणु इन दोऊनके अभावतैं तिनकैं विषैं तिष्ठते गुण, जाति, सत्व, क्रिया, विशेष, समवाय ये भी न ठहरैं । तातैं परमाणूनिकैं कथंचित् स्कंधरूप अन्यस्वरूपता मानना युक्त है ।

जैसें बौद्धमतीनिकैं परमाणूनिका अन्यस्वरूप न मानना अयुक्त है। तैसैं वैशेषिकनिका भी मत सिद्ध न होय है ॥ ६८ ॥

आगें सांख्यमती कार्यकारणकूं एकस्वरूप ही मानै कथाचित् अन्यस्वरूप न मानै तामैं दूषण दिखावै हैं—

एकत्वेन्यतराभाव शेषाभावोऽविनाभुव ।
द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥ ६९ ॥

अर्थ—कार्य जो महान् आदि अर कारण जो प्रधान, ताके परस्पर एकस्वरूप तादात्म्य मानते जब तादात्म्य एकस्वरूप भया तब एकका अभाव भया, एक रह्या। बहुरि एक रह्या सो दूसरैं तैं अविनाभावि है तातैं दूसरेका अभाव होतैं शेष एक रह्या था ताका भी अभाव भया ऐसैं दोऊ ही न ठहरैं हैं। बहुरि दोयपनकी संख्या मानिये है ताका विरोध आवे है यह संख्या भी न ठहरै। बहुरि यदि कहै कि द्वित्वकी संख्या तो संवृति है, कल्पना है, उपचार है। तो कल्पना उपचार है सो मृषाही है असत्य ही है ताकी कहा (क्या) चर्चा है। ऐसै प्रधान, महान, आदि सांख्यकल्पितकैं अनन्यता का एकान्त माननेतैं दूषण आवे है। तथा पुरुष अर चैतन्य, इनकैं भी अनन्यताका एकान्त माननेतैं दोऊका अभाव अर द्वित्व संख्यका विरोध आवे है। ऐसैं कार्यकारणादिकके अनन्यताका एकान्त नाहीं संभवै है ॥ ६९ ॥

आगैं, अन्यता अर अनन्यता इन दोऊ पक्षका एकान्त मानन तैं तथा अवक्तव्य एकान्त माननै तैं दूषण दिखावै हैं —

विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यामिति युज्यते ॥ ७० ॥

अर्थ—स्याद्वादन्यायके विद्वेषीनिकैं अन्यता अर अनन्यता दोऊकैं एकस्वरूपपना न सभवै है। अवयव अवयवी, गुण गुणी, सामान्य विशेष आदिकनके भेद अर अभेद इन दोऊनका एकस्वरूपपना न बनै है जातैं भेद, अभेदमें परस्पर विरोध है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त भी नाहीं बनै जातैं जो एकान्तमें 'अवाच्य है,' ऐसी उक्ति भी युक्त न होय है ॥ ७० ॥

आगैं, ऐसैं अवयव अवयवी आदिका अन्यत्व आदि एकान्त जो भेदाभेद एकान्त, ताकू निराकरण करि अब तिनकैं अनेकान्त सामर्थ्य-करि सिद्ध भया तोऊ कुवादी की आशंका दूरकरनेकू तथा दृष्टि निश्च-यकरनेके इच्छुक आचार्य अनेकान्तकू कहैं हैं—

द्रव्यपर्याययोरैक्य तयोरव्यतिरेकतः ।
परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावत' ॥ ७१ ॥
सज्ञासख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषतः ।
प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्व न सर्वथा ॥७२ ॥

अर्थ—द्रव्य अर पर्याय, इनकै कथचित् एकपना है जातैं दोऊनकैं अव्यतिरेक है, सर्वथा भिन्नपना नाहीं है। बहुरि तिन द्रव्य पर्यायनिकैं कथचित् नानापना है जातैं इनकै परिणामका विशेष है, बहुरि शक्ति अर शक्तिमानपना है, बहुरि सज्ञा का विशेष है, बहुरि सख्याका विशेष है, बहुरि स्वलक्षणका विशेष है, अर प्रयोजनका भेद है। ऐसैं छह हेतुतैं नानापना है। बहुरि आदि शब्दतैं भिन्न प्रतिभास होना, अर भिन्नकाल होना। ऐसैं कथचित् भेदाभेदपना है। सर्वथा नाहीं है।

यहा द्रव्य शब्दतैं तो गुणी, सामान्य, उपादानकारण इनका ग्रहण है। बहुरि पर्याय शब्दतैं गुण, व्यक्ति, कार्य इनका ग्रहण है। बहुरि अव्यतिरेक शब्दतैं अशक्यविवेचनपनेका ग्रहण है याका यह हू अर्थ

है कि विवक्षित द्रव्य पर्यायनिकैं अन्यद्रव्यमैं प्राप्तकरनेके असमर्थपनातैं अशक्यविवेचन कह्या, अन्यद्रव्यके गुण पर्याय अन्यद्रव्यमें न जाय, यह अर्थ है। बहुरि द्रव्य पर्यायनि कैं कथंचित् एकता कहनेमें विरोध, वैयधिकरण, संशय, व्यतिकर, शङ्कर, अनवस्था, अप्रतिपत्ति, अभाव ये दूषण नहीं आवै हैं। जातैं जैसैं एकता कही तैसैं प्रतीतिमें आवै है, कल्पनाकरि वचनमात्र नाहीं कहै है। अर जो प्रतीतिसिद्ध होय तामें दूषण काहेका ? । बहुरि जहा नानापना कह्या तहा परिणामके विशेष हैं, द्रव्यका तो अनादि अनंत एकस्वभाव स्वाभाविक परिणाम है। बहुरि पर्यायका सादि, सांत अनंत नैमित्तिक परिणाम हैं। ऐसैं ही शक्तिमान शक्तिभाव जानना। बहुरि द्रव्य नाम है पर्यायनाम ऐसा संज्ञाका विशेष है। बहुरि द्रव्य एक है पर्याय बहुत हैं ऐसैं संख्याका विशेष है। बहुरि द्रव्यतैं तो एकपना, अन्वयपना ऐसैं ज्ञान आदि कार्य होय हैं। बहुरि पर्यायतैं अनेकपना, जुदापना आदिक ज्ञानरूप कार्य होना यह प्रयोजनका विशेष है। बहुरि द्रव्य त्रिकाल गोचर है पर्याय वर्तमानकालगोचर है ऐसैं कालभेद है। बहुरि भिन्न प्रतिभास है ही, सो पूर्वोक्तविशेषनितैं ही जान्या जाय है। बहुरि लक्षणभेद भी तैसैं ही जानना। द्रव्यका लक्षण गुणपर्यायवान है पर्यायका तद्भाव परिणाम ऐसा लक्षण है ऐसैं भेदाभेद एकान्त निराकरण करि अनेकान्तका स्थापन किया। तहा वस्तु स्वलक्षणके भेदतैं नाना ही है। कथंचित् अशक्यविवेचनपनातैं एकरूप ही है। कथंचित् दोऊ भाव हैं। क्रमरूप कहने तैं कथंचित् दोऊ रूप युगपत् कह्या जाय तातैं अवक्तव्य ही है कथंचित् नानात्व अवक्तव्य ही जातैं परस्पर विरुद्धरूप है अर युगपत् न कह्या जाय है। बहुरि कथंचित् एकत्व अवक्तव्य ही है जातैं अशक्यविवेचन स्वरूप है अर युग

पत् दोऊरूप है सो कह्या न जाय है। बहुरि कथंचित् दोऊ रूप है अर युगपत् न कह्या जाय है तातैं उभय अवक्तव्य है। ऐसैं सप्तभगी प्रक्रिया प्रत्यक्ष, अनुमानतैं अविरुद्ध जाननी ॥ ७१ । ७२ ॥

चौपाइ ।

नानापना एकता भाय, पक्षपाततैं मिथ्या थाय ।
अनेकान्त साधैं सुखदाय, ज्ञात यथा कीया जिनराय ॥ १ ॥

इति श्री स्वामी समन्तभद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम-स्तोत्रकी देशभाषा वचनिकाविषैं सर्वथा नानपना माननेवाले एकान्तके पक्षपातीको सम्बोधनरूप-चतुर्थ परिच्छेद समाप्त

अथ पञ्चम परिच्छेद ।

दोहा ।

एक वस्तुमें धर्म दो, साधे श्री गणधार ।
सुअपेक्षा अनपेक्ष तैं, नमो तास पद सार ॥ १ ॥

अब यहां प्रथम ही अपेक्षा अनपेक्षा के एकान्त पक्षविषैं दूषण दिखावैं हैं—

यद्यापेक्षिकसिद्धिः स्यान्न द्वय व्यवतिष्ठते ।
अनापेक्षिकसिद्धौ च न सामान्यविशेषता ॥ ७२ ॥

अर्थ—जो धर्म्म धर्म्मी आदि कै एकांत करि आपेक्षिक सिद्धि मानिए, तो धर्म्म धर्म्मी दोऊ हीन ठहरै । बहुरि अपेक्षा बिना एकांत करि सिद्धि मानिए तो सामान्य विशेषपणा न ठहरै । तहां बौद्धमती ऐसैं मानैं हैं । प्रत्यक्ष बुद्धि में धर्म्म अथवा धर्म्मी न प्रति भासै है । प्रत्यक्ष देखें पीछैं विकल्प बुद्धि होय । तिस तैं धर्म्म धर्म्मी कल्पिये है । ऐसैं कल्पना मात्र है जाकौं धर्म्म कल्पिये सो ही धर्म्मी हो जाय धर्म्मी धर्म्म हो जाय । ऐसैं कहूँ ठहरै नाहीं, जैसैं शब्द अपेक्षा सत्त्व आदि कूं धर्म्म कल्पिये सो ही ज्ञेयपणा की अपेक्षा धर्म्मी हो जाय । ऐसैं विशेष्य विशेषण पणा गुण गुणी पणा क्रिया क्रियावान पणा कार्य कारण पणा साध्य साधन पणा ग्राह्य ग्राहक पणा इत्यादि परस्पर अपेक्षा मात्र ही तैं सिद्ध है । ऐसैं बौद्ध मती कौ ज्यौं एकान्त करि मानिए तो दोऊ न ठहरैं, तातैं अपेक्ष मात्र सिद्धि का एकान्त सिद्ध नाहीं, श्रेष्ठ नाहीं ॥ बहुरि धर्म्म धर्म्मी कं सर्वथा अपेक्षा बिना ही सिद्धि नैयायिक मानै है । कहै है—धर्म्म धर्म्म भिन्न ज्ञान के विषय हैं । इनके परस्पर अपेक्षा नाहीं ऐसैं एकान्त कौं

मानैं है। ताके भी अन्वय व्यतिरेक न ठहरै जातैं भेद अभेद है। ते परस्पर अपेक्षा बिना सिद्धि न होय। अन्वय तौ सामान्य है अर व्यतिरेक विशेष है, ते परस्पर अपेक्षा स्वरूप हैं। तिन दोऊ के परस्पर अपेक्षा न मानिये तो सामान्य विशेष भाव न ठहरै तातैं अपेक्षा अनपेक्षा ये दोऊ ही एकान्त तैं बनै नाहीं एकान्त तैं वस्तु की व्यवस्था नहीं हैं॥ ७३॥

आगैं दोऊ मानि एकान्त माने तथा अवक्तव्य एकान्त माने, तामैं दूषण दिखावैं हैं

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषां।
अवाच्यतैकांतेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते॥ ७४॥

अर्थ—अपेक्षा अनपेक्षा दोऊका एकान्त माने तौ दोऊ एक स्वरूप होय नाहीं जातैं स्याद्वाद न्यायके विद्वेषीनकै विरोध नामा दूषण आवै है। जैसे सत् असत् एकान्त में आवे तसैं तातैं ये भी एकान्त श्रेष्ठ नाहीं है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त करै तो अवाच्य है। ऐसैं कहना ही न बणैं तातैं अवक्तव्य एकान्त भी श्रेष्ठ नाहीं॥ ७४॥

आगैं अपेक्षा अनपेक्षाका एकान्तके निराकरणकी सामर्थ्यतैं अनेकांत सिद्ध भया तौऊ कुवादी की आशंका दूर करणेंकू अनेकांतकू आचार्य्य कहै हैं॥

धर्म्मधर्म्यविनाभावसिद्ध्यत्यन्योन्यवीक्षया,
न स्वरूप स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकांगवत्॥ ७५॥

अर्थ—धर्म्म अर धर्म्मी के अविना भाव है, सो तौ परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध है। धर्म्म बिना धर्म्मी नाहीं। बहुरि धर्म्म, धर्म्मी का स्वरूप है। सो परस्पर अपेक्षा करि सिद्ध नाही है। स्वरूप है सो स्वत सिद्ध है। आपही पहलैं ही स्वयमेव सिद्ध है जैसे कारक के

अग कर्ता कर्म आदि हैं तथा नायक के अग ज्ञेय ज्ञायक है तैसे कर्त्ता बिना कर्म नाहीं अर कर्म बिना कर्त्ता नाहीं । ऐसैं अपेक्षा सिद्ध है । बहुरि कर्त्ता का करनेवाठापणा स्वरूप है सो पहलैं आपै आप सिद्ध है ही तैसे ही कर्म आपै आप सिद्ध है स्वरूप मैं अपेक्षा सिद्ध पणा है नाहीं एसैं ही सामन्य विशेष गुण गुणी कार्य कारण प्रमाण प्रमेय इत्यादि जानना । कथंचित् आपक्षक सिद्ध है कथंचित् अनापक्षक सिद्ध है कथंचित् दोऊ करि सिद्ध है कथचित् अवक्तव्य है कथचित् आपक्षिक अवक्तव्य है कथंचित् अनापक्षिक अवक्तव्य है कथचित् दोऊ हैं अर अवक्तव्य है । दोऊ के अविनाभाव अर निज स्वरूप हेतु लगावणा । ऐसैं सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्वोक्त प्रकार लगावणी ॥ ७५ ॥

चौपाई ।

आपेक्षिक आदिक एकात । मिथ्या विपनन् कयो सिद्धांत
जैन मुनिनके वचन जु मन, सुने जहर उतरै वह तन ॥१॥

इति श्री स्वामी समंत भद्र विरचित आप्त मीमासा नाम देवागम स्तोत्र की सक्षेप अर्थ रूप देश भाषा मय वचनिका विषैं पाचवा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ५ ॥

यहा ताई कारिका पिचेहत्तर भई । आगैं छठा परिच्छेद का प्रारभ होता ।

दोहा ।

हेतु अहेतु विचारिकै पक्षपात परिहार ।
आगम वरतायो मुनीनमौलीश करधार. ॥ १ ॥

अब यहा प्रथम हेतु अर आगम का एकातपक्षविषैं दूषणभी दिखावैं है ।

सिद्धैं चेद्धेतुत सर्वं न प्रत्यक्षादितो गति ।
सिद्ध चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥ ७६ ॥

अर्थ—जो अपना वाञ्छित कार्य सर्व एकांत करि हेतु तैं ही सिद्ध होना मानिये तो प्रत्यक्षादिक तैं होय है सो न ठहरै । बहुरि एकान्त करि आगम ही तैं सिद्ध होना मानिये, तो प्रत्यक्षादि तैं विरुद्ध तथा परस्पर विरुद्ध है पदार्थ जिनकैं ऐसैं आगमोक्त मत तें भी सिद्ध ठहरैं । ऐसैं दोष आवै है यहा ऐसा जानना जो समस्त ही लौकिक जन तथा परीक्षक जन अपने आदरने योग्य उपेय तत्त्व कूँ निश्चय करि अर तिसका उपाय तत्त्व का निश्चय करैं हैं सो यहा मोक्ष के अर्थीन कूं भी मोक्षका स्वरूप का निश्चय करि अर तिसका उपाय का निश्चय करावना, यहा केई अन्यमती अनुमान ही तैं उपेय तत्त्व की सिद्धि मानैं हैं । तिनकैं प्रत्यक्षादिक तैं गति कहिये वस्तु की प्राप्ति तथा ज्ञान न होय, जातैं अनुमान होय है । जो आदि में लिंग का प्रत्यक्ष दर्शन होय तथा दृष्टान्त प्रत्यक्ष होय तब होय है । यातैं प्रत्यक्ष बिना अनुमान की भी सिद्धि नाहीं होय है-तातैं हेतु तैं एकान्त करि सिद्धि मानना श्रेष्ठ नाहीं बहुरि केई मीमासक आदि आगम हीतैं एकान्त करि सिद्ध होना मानैं हैं । तिनकैं परस्पर विरुद्ध अर्थ जिनमैं पाइए ऐसैं सर्व ही मत सिद्ध ठहरैं । जातैं आगम का प्रमाणता युक्ति हेतु आदि करि कियें बिना प्रमाण ठहरै तब सम्यक् मिथ्या का विभाग कैसैं ठहरै तातैं आगम तैं भी सिद्ध होना एकान्त करि मानना श्रेष्ठ नाहीं । ऐसैं दोऊ ही एकान्त वाद करि सहित हैं । आगैं दोऊ तैं सिद्ध मानने का एकान्त विषैं दोष दिखावैं हैं ॥ ७६ ॥

विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमितियुज्यते ॥ ७७ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्याय के विद्वेषी एकान्त वादीन कै हेतु अर आगम दोऊ एक स्वरूप मानना मति होहु जातैं दोऊ मैं एकान्त करि

मानवैं मैं विरोध दूषण आवै है बहुरि अवक्तव्य एकांत मानैं। अवक्तव्य है ऐसैं कहना न बणैं। कहते वक्तव्य भी ठहरै, तब एकांत कहना न बणै। ऐसैं एकांत में दूषण है आगैं हेतु का अर अहेतु का अनेकान्त कूँ दिखावैं हैं ॥ ७७ ॥

वक्तव्यं यदनाप्तेयद्धेतो, साध्य तद्धेतुभाषित।
आप्तेरुक्तरिदंप्राक्त्यात्सा ध्यमागमसाधित ॥ ७८ ॥

अर्थ—वक्ता अनाप्त होतैं जो हेतुतैं साध्य होय सो तो हेतु साधित है। बहुरि वक्ता आप्त होतैं तिसके वचनतैं साध्य होय सो आगम साधित है। यहा आप्त अनाप्तका स्वरूप पूर्वे कह्या था जो दोष आवरण रहित सर्वज्ञ वीतराग है सो ऐसा अरहंत भगवान जातैं ताके वचन युक्ति आगमतैं अविरोधरूप हैं अर ताकैं कहे भाषे तत्व प्रमाणतैं बाधे न जाय हैं। बहुरि जो दोष सहित है सर्वज्ञ वीतराग नाहीं सो अनाप्त है ताके वचन इष्टतत्व प्रत्यक्ष बाधित हैं तातैं आप्तके तो वचन ही प्रमाण करने अर अनाप्त के वचन परीक्षा करि प्रमाण करनै इत्यादि चर्चा अष्ट सहस्री तैं जानना ऐसैं कथंचित् सर्व हेतु तैं सिद्ध है। जातैं जहा आप्त के वचन की अपेक्षा नाहीं बहुरि कथंचित् आगमतैं सिद्ध है जातैं जहा इंद्रिय प्रत्यक्ष अर लिंग की अपेक्षा नाहीं इत्यादि पूर्वे प्रकार की जैसैं सप्तभंगी प्रक्रिया जोडणी ॥ ७८ ॥

चौपाई।

मोक्षतत्व अर मोक्ष उपाय हेतु अहेतु कथंचित भाय
सो यो अनेकान्त तैं मल तजि एकान्त पक्ष मुनि चलैं।

इति श्री स्वामी समंत भद्र विरचित आप्त मीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की सक्षेप अर्थरूप देश भाषा मय वचनिका विषै दशा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ६ ॥

इहां ताई कारिका अठहत्तर भईं—आगें सातवाँ परिच्छेदका प्रारंभ ।

दोहा ।

अतरग वहि तत्त्व दो अनेकान्त तैं साधि ।
वरताये तिनकूनमू । मिथ्या पक्ष सुवाधि ॥ १ ॥

अब इहा प्रथम ही अतरग अर्थ हीं कू एकात करि मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं ।

अतरगार्थतैकाते बुद्धिवाक्य मृपारिल ।
प्रमाणा भाममेवातस्तत्प्रमाणादृते कथ ॥ ७९ ॥

अर्थ—अतरगार्थ कहिये अपने ही सवेदन अनुभव मैं आवै जो ज्ञान ताका एकात जो वाह्य पदार्थ नै मानना, ताकै होतैं बुद्धिवाक्य कहिये हेतुवाद का कारण उपाध्याय शिष्य का वाक्य सो सर्व ही मृपा कहिये असत्य झूठा ठहरै । जातैं वाक्य है सो वाह्य पदार्थ है सो अतरंग एकान्त मैं काहे का ठहरै । वहुरि जव बुद्धि वाक्य झूठे ठहरैं तव पर कू प्रतीत उपजावनें कू प्रमाण वाक्य करना सो भी प्रमाणा भास ही ठहरा वहुरि प्रमाणाभास है सो प्रमाण विना कैसे होई ? नाहीं होय ।

ऐसैं दूषण आवै । इहा अंतरगार्थ एकात माननेवाला विज्ञानाद्वैत-वादी वौद्ध है सो वाह्य पदाथ मानने वालेकू दूषण दे है सो वचनि करि दे है । अरि वचनिकू परमार्थ भूत मानैं नाहीं तव झूठे वचन हैं सो प्रमाण भूत नाहीं प्रमाणाभास हैं । तव दूषण देना सत्यार्थ कैसे होय वहुरि अपना स्वसवेदनरूप अतरग तव स्वतै ही सिद्ध न होय है । जातैं स्वसवेदनकूं अद्वैतता मानै है । तव द्वैत माने विना साध्य साधनादि भेद नाहीं वणे है भेद मानै तो अद्वैत एकात न ठहरै वहुरि स्वत सिद्ध ठहरै । तव अन्य वाह्य तत्व मानै है तिनका मानना

सत्यार्थ ठहरै तिनकौ निषेधै तौ काहू तैं निषेधै। इत्यादि अनेक एकान्त मानने मैं दूषण है ॥ ७९ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी बोद्धकू फेर दूषण दिखावैं है।

साध्यसाधनविज्ञप्तेर्यदि विज्ञप्तिमात्रता।
न साध्य न च हेतुश्च, प्रतिज्ञा हेतु दोषत ॥ ८० ॥

अर्थ—विज्ञानाद्वैतवादी एसैं कहै जो साध्य साधनका विज्ञप्ति कहिये विज्ञान है ताकै विज्ञप्तिमात्रता कहिये विज्ञान मात्र पणा ही है। तातैं नतौ साध्य ठहरै न हेतु ठहरै जातैं याकै प्रतिज्ञा अर हेतुका दोष आवै है साध्य युक्त पक्षका वचन सो तौ प्रतिज्ञा, अर साधनका वचन सो हेतु, सो ताके कहनैं मैं अपने वचन ही तैं विरोध आवै है। जातैं वह विज्ञानाद्वैततत्वकू असैं साधै है। नील पदार्थ अर नीला की बुद्धि इनका साथ ग्रहणका नियम है तातैं अभेद है। जैसै नेत्र विकारकू दोय चन्द्रमा दीखैं सो परमार्थतै एक ही है। तैसै नील पदार्थ अर नील बुद्धिकू दोय मानना भ्रम है। असै अपना तत्वकू साधै ताकै अपने वचन ही तैं विरोध आवै है। साध्य साधनरूप संवेदन दोय देखि अर एकपणाका एकान्त कहै ताके विरोध कैसै न आवै है। यहा धर्म्म धर्म्मीका भेद वचन कह्या संवदन दोयका वचन कह्या। बहुरि ज्ञान अर वचन ये दोय कह्या बहुरि हेतु दृष्टान्त का भेदका वचन कह्या तो अभेद कहने मैं विरोध कैसै न आवै बहुरि वचनतैं विरोधका भय करि अवक्तव्य कहै अवक्तव्यका वचनभी वणै। बहुरि कहै जो अन्य कोई द्वैत माने है ताकी मान्य के निषेध कूं मैं भी भेदका वचन कहू हौं तौ अद्वैत एकान्त माननेतैं तौ अन्य दूजा ठहरै ही नाहीं। निषेध कौन कूं है। इत्यादि दूषण आवै है। तातै संवेदना द्वैत वादी मिथ्या दृष्टि है।

ऐसैं अतरगार्थ एकान्त पक्ष मैं बुद्धि वाक्य तथा सम्यक् प्रकार उपाय तत्व नाहीं सभवै है। तातैं श्रेष्ट नाहीं ॥ ८० ॥

आगैं बुहिरंगार्थ पक्ष मैं दूषण दिखावैं हैं।

बहिरगार्थतैकाते, प्रमाणाभासनिन्हवात् ॥
सर्वेषा कार्य्यसिद्धि:, स्याद्विरुद्धार्थाभिधायिनाम् ॥८१॥

अर्थ—बहिरगार्थ कहिये बाह्य घट पट आदि पदार्थ तिनका एकान्त कहिये बाह्य पदार्थ ही परमार्थ भूत है। अतरगार्थ ज्ञान है सो परमार्थ नाहीं। ऐसा पक्ष होतैं प्रमाणाभास का लोप होय है। ताके लोप तैं सर्व ही परस्पर विरुद्ध पदार्थ का स्वरूप कहने वालेनिकैं कार्य-सिद्धि ठहरै है प्रमाण अप्रमाण का विभाग नाहीं ठहर जातैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप तो ज्ञान है सो ज्ञान परमार्थ भूत नाहीं। तब अप्रमाण काहे का विरुद्ध स्वरूप कहने वाले भी सचि ठहरैं हैं ऐसैं दोष आवे है ॥ ८१ ॥

आगैं अतरग बहिरग दोऊ पक्ष मानि एकान्त माने तथा अवक्तव्य एकान्त मानै तामैं दूषण दिखावैं है।

विरोधान्नोभयैकात्म्य, स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकातेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ८२ ॥

अर्थ—स्याद्वाद याय के विद्वेषीनिकैं उभय कहिये अतरग तत्व ज्ञान अर बाह्य तत्व ज्ञेय ये दोऊ एक स्वरूप न होय हैं जातैं इनमें परस्पर विरोधहै। बहुरि विरोधके भयस अवाच्यता कहिये अवक्तव्य पक्ष का एकान्त ग्रहण करै तो अवाच्य है। ऐसा उक्ति कहिये कहना न बणैं ऐसैं दोष है ॥ ८२ ॥

आगैं कहैं है। जो दोऊ पक्ष कूँ स्याद्वादका आश्रय लेय कहै तौ दोष नाहीं है।

रूप जो वाह्य अर्थ तिस सहित ही है। जैसे प्रमा कहिये प्रमाण की उक्ति कहिये सज्ञा है। तिन प्रमाणनिका वाच्यार्थ प्रत्यक्ष परोक्षआदि है। तैसें ही मायादिक भ्रान्ति भी सशयादिक ज्ञानके भेद रूपहै। इनका वाह्यार्थ कैसे नाहीं। बहुरि इहा चारवाकमती कहे? जो शरीर इन्द्रीयादिका समूह है सो ही जीव शब्दका अर्थ है। इनतैं भिन्न स्वरूप तो जीव वस्तु किछु है नाही ताकू कहिये है। जो जीव ऐसा अर्थ लोक प्रसिद्ध जीवका ग्रहण है जीव चालै है जीव गया जीव तिष्ठ है एसा लोक प्रसिद्ध व्यवहार है सो ऐसा व्यवहार शरीर विषै नाहीं है। इंद्रियनि विषै नाहीं है। बहुरि बोलनाआदि शब्दआदि विषै नाहीं है। जो इनका भोगने वाला आत्मा है ताहीविषै यह व्यवहार है बहुरि कोऊ चारवाक मती कहै। ऐसा जीव गर्भ तैं लेय मरणपर्यत है अनादि अनत नाहीं। ताकू कहिये जो जन्मतैं पहिलैं अर मरणके पीछे भी जीवका अस्तित्व है। ऐसा जीव पृथ्वी आदिकतैं उपजै नाहीं। इनतैं जीव विलक्षण है। पृथ्वी आदि जड है जीव चतन्य है जे चारवाक ऐसे तैं माने ताके भी तत्व की सख्या लक्षणके भेद तै है सो न वणैं। ऐसैं काय सहित जीवके विषै जीवका व्यवहार है। बहुरि बौद्धमती क्षणिक चित् सतान विषै जीवका व्यवहार करै। ता यहू भी न वणैं। यातैं उपयोग स्वरूप कर्त्ता भोक्ता स्वरूप ही जीव शब्दका वाच्यार्थ है। बहुरि कोई कहै। सज्ञा हेतु तैं जीव अर्थ साध्या सो सज्ञा तो वक्ताका अभिप्राय साध्है। ताकू कहिये ऐसैं नाहीं जामें अर्थ क्रिया होय सो सज्ञा का वाच्यार्थ है। कोई कहै खर विषाण सज्ञाका कहा अर्थ है। ताकूँ कहिये अभावके निक्षेप की प्राप्ति याका अर्थ है सो यही भी सज्ञा वाह्य अर्थ विना नाहीं है। इत्यादि जानना ॥८४॥

ज्ञानप्रमेयापेक्षाया प्रमाणाभासनिह्नव ।
बहिःप्रमेयापेक्षाया प्रमाण तन्निभ च ते ॥ ८२ ॥

अर्थ—ज्ञानप्रमेय कहिये ज्ञान है ते सब ही भेदनि सहित स्वसंवेदन रूप है अपना ज्ञानकाहू क्षयकू जानू। ज्ञान मात्र कहि तौ अपनें आस्वाद में आवे है तिसकी अपेक्षा तो सर्व ज्ञान स्वसंवेदन प्रत्यक्ष प्रमाण स्वरूप है । प्रमाणाभास किछू भी नाहीं है। बहुरि बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कहू प्रमाण है कहू अप्रमाण है। प्रमाणाभास है तहा विसंवाद होय बाधा आवे तहा तौ प्रमाणाभास है बहुरि जहा निर्बाध होय तहा प्रमाण है । जातैं एक ही ज्ञान कैं ज्ञान के आवरण के अभाव सद्भाव के विशेष तैं सत्य असत्य संवेदन परिणाम की सिद्धि है। और ते कहिये तुम्हारे अर्हंत के मत विषैं सिद्धि होय है ॥ ८३ ॥

आगे जीव ऐसा शब्द है। सो याका बाह्य अर्थ भी है तहाँ चार्वाक आदि मतवाला कहै जो जीव ही नाहीं तौ जीव ऐसा शब्द कैसैं कह्या । जीवका ग्रहण करनेवाला प्रमाण नाही, ऐसैं कहने वाले कूं जीव का ग्राहक प्रमाण का सद्भाव दिखावैं है,—

जीवशब्द स बाह्यार्थं सनामद्धेतुशब्दवत् ।
मायादिभ्रान्तिसंज्ञाश्च, मायाद्यै स्वै भ्रमोक्तिवत् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जीव ऐसा शब्द है सो बाह्य पदार्थ सहित है इस शब्द का अर्थ जीव वस्तु है। जातैं यह शब्द सत्यार्थ नाम है जे संज्ञा हैं अर नाम हैं ते बाह्य पदार्थ बिना होय नाहीं। जैसे हेतु शब्द है सो बाह्य याका अर्थ है। वादी प्रतिवादी प्रसिद्ध है। बहुरि यहां कोई कहै माया आदि भ्रांति का संज्ञा है। तिनका बाह्य पदार्थ कहा है ताकूं कहिये मायादिक भ्रान्तकी संज्ञा हैं। ते भी अपने स्वरूप

आगैं इसी अर्थकूं निरोप करि सार्वै है ।

बुद्धिशब्दार्थसञ्ज्ञास्तास्तिस्रो बुध्यादिवाचका ।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बका ॥ ८५ ॥

अर्थ—बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन सज्ञा हैं ते बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञानितैं भिन्न बाह्यार्थ हे तिनका वाचक है । बहुरि बुद्धि शब्द अर्थ इनका बोध भी तीन ६ ते तिनतैं तुल्य हैं समान हैं । ते तिन तीननिका प्रतिबिम्बक व्यजक है । इहा ऐसा जानना । जो पहिली कारिकामें संज्ञापणाका हेतु तैं बाह्य पदार्थ साध्या था, तहा बौद्धमती एसैं कहे है । जो जीव शब्दका हेतु बाह्यार्थ तो सज्ञापणा हेतु तैं सधै । परतु जीव शब्द का बुद्धि और जीव शब्दका शुद्ध ये भी अर्थ है । ते तौ विपक्ष है तिनमैं सज्ञापणा हेतु व्यापै ६ । तातैं इस हेतुके व्यभिचार आवे है तातू आचार्य इस कारिकामैं उपदेश देय व्यभिचार मेटया है जो सज्ञापणा हेतु तो बाह्यार्थ सहितपणा ही कू साधै है । बुद्धि शब्द अर्थ य सज्ञा है । ते इनका बाह्याथ बुद्धि शब्द अर्थ है । तिनहीके वाचक हैं । और बुद्धि शब्द अर्थ इनका ज्ञान है सो भी तिन तीनानि तैं तुल्य है तो तिन बाह्यार्थनिका प्रतिबिम्बक है दिखानेवाला ६ जैसे अर्थ ६ पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द है । सो यातैं जानकू न हनना । ऐसैं कहै जीव अर्थ का प्रतिबिंबक बोध उपजे है । तैसैं ही बुद्धि है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द ते जीव है । ऐसा जानिये ६ । ऐसा बुद्धि अर्थ का प्रतिबिंबक होय है तैसे ही शब्द है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द ते जीवकू कहै है ऐसा ज्ञान होय है ऐसे शब्द का प्रतिबिंबक होय है । ऐसे सज्ञा तौ बाह्य पदार्थनै कहैहै । अर शब्द का अर्थ, नाम, ज्ञान, ये तीनों तिनक समान ६ । जे प्रतिबिंबक हैं । जातै तिन तीनूंका ज्ञान करावैं हैं । ऐसे व्यभचार मेट्या है ॥ ८५ ॥

आगैं विज्ञाद्वैतवादी बौद्ध कहै जो सज्ञापणा तैं शब्द कू बाह्यार्थ सहित साध्या सो हमतौ बाह्यार्थ सिद्धि नैं करैं हैं। सज्ञा है सो भी विज्ञानही है तिस तैं भिन्न बाह्य पदार्थ तौ नाहीं है बहुरि हेतु शब्दका दृष्टान्त है सो भी साधन विकल दृष्टातामासहे हेतु भी विज्ञानमैं आय गया, ताकू आचार्य उत्तर रूप कारिका कहैं हैं।

वक्तृश्रोतृप्रमातृणा बोधवाक्यप्रमाः पृथक्
भ्रातावेव प्रमाभ्रातौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥ ८६ ॥

अर्थ—वक्ता श्रोता और प्रमाता ये इन तीनूनका बोध वाक्य प्रमाण ये तीनू ही भिन्न भिन्न हैं। यहा कहैं ये तीनू ही भ्रान्ति हैं भ्रम रूप हैं तौ भ्रान्ति स्वरूप होते प्रमाण होना भी भ्रांति ही ठहरै। फेर कहै प्रमाण भी भ्रान्ति ही होहु तौ प्रमाण भ्रान्ति स्वरूप होतैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप बाह्य पदार्थ प्रमेय हैं ते भी भ्रान्ति स्वरूप ठहरैं हैं। ऐसैं होते जगत ज्ञानका अर बाह्य पदार्थका सर्व ही का लोप होय। तब सवेदनाद्वैतवादी की भी सिद्धि नाहीं होय है। इहा ऐसा जानना जो वक्ताकै अर्थका ज्ञान विना तौ वाक्य कैसे प्रवर्त बहुरि वक्ताका वाक्य नैं (न) प्रवर्तै तब श्रोता कैं अर्थका ज्ञान कैसे होय। बहुरि प्रमाता, यथा अयथा, पदार्थका निर्णय करने वाला ताकै पदार्थकी प्रमाणता नै होय तौ शब्द अर अर्थ जे प्रमेय तिनका यथार्थपणा कैसे होय। तातैं वक्ता श्रोता प्रमाताका ज्ञान वाक्य प्रमाणता न्यारे न्यारे माननैं जो संवेदनाद्वैतवादी न मानैं तौ ताका सवेदनाद्वैत भी सिद्ध न होय है ॥ ८६ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी कहै जो भ्रान्ति रहित प्रमाण निर्बाध मानिये है तौ आचार्य कहैं हैं बाह्य पदार्थ भी मानना। बाह्य पदार्थ माने विना प्रमाण अर प्रमाणा भासकी व्यवस्था नाहीं ठहरै है।

आगैं इसी अर्थकूं विशेष करि सार्धे हैं।

बुद्धिशब्दार्थसंज्ञास्तास्तिस्रो बुध्यादिवाचका।
तुल्या बुद्ध्यादिबोधाश्च त्रयस्तत्प्रतिबिम्बका ॥ ८५ ॥

अर्थ—बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञा हैं ते बुद्धि शब्द अर्थ ये तीन संज्ञानितैं भिन्न बाह्यार्थ हे तिनका वाचक है। बहुरि बुद्धि शब्द अर्थ इनका बोध भी तीन है ते तिनतैं तुल्य हैं समान हैं। ते तिन तीननिका प्रतिबिंबक व्यंजक है। इहा ऐसा जानना। जो पहिली कारिकामें संज्ञापणाका हेतु तैं बाह्य पदार्थ साध्या था, तहा बौद्धमती एसैं कहे है। जो जीव शब्दका हेतु बाह्यार्थ तो संज्ञापणा हेतु तैं सधे। परतु जीव शब्द का बुद्धि और जाव शब्दका शद्ध ये भी अर्थ है। ते तौ विपक्ष है तिनमैं संज्ञापणा हेतु व्यापै है। तातैं इस हेतुके व्यभिचार आवै है ताकू आचार्य इस कारिकामैं उपदेश देय व्यभिचार मेटया है जो संज्ञापणा हेतु तौ बाह्याथ सहितपणा ही कू साधै है। बुद्धि शब्द अर्थ ये संज्ञा हैं। ते इनका बाह्यार्थ बुद्धि शब्द अर्थ है। तिनहीके वाचक है। और बुद्धि शब्द अर्थ इनका ज्ञान है सो भी तिन तीननि तैं तुल्य है तो तिन बाह्यार्थनिका प्रतिबिम्बक ए दिखानेवाला है जैसे अर्थ है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द है। सो यातैं जानकू न हनना। ऐसैं कहे जाव अर्थ का प्रतिबिंबक बोध उपजै है। तैसें ही बुद्धि है पदार्थ जाका ऐसा जीव शब्द तै जीव है। ऐसा जानिये है। ऐसा बुद्धि अर्थ का प्रतिबिंबक होय है तैसे ही शब्द है पदार्थ जाका एसा जाव शब्द तै जीवकू कहैं है ऐसा ज्ञान होय है एसे शब्द का प्रतिबिंबक होय है। ऐसे संज्ञा तो बाह्य पदार्थनै कहैहै। अर शब्द का अर्थ, नाम, ज्ञान, ये तीनों तिनकू समान है। जे प्रतिबिंबक हैं। जातै तिन तीनूंन का ज्ञान करावैं हैं। ऐसे व्यभचार मेट्या है ॥ ८५ ॥

आगे विज्ञाद्वैतवादी बौद्ध कहै जो सज्ञापणा तैं शब्द कू बाह्यार्थ सहित साध्या सो हमतौ बाह्यार्थ सिद्धि नैं करैं हैं। सज्ञा है सो भी विज्ञानही है तिस तैं भिन्न बाह्य पदार्थ तौ नाहीं है बहुरि हेतु शब्दका दृष्टान्त है सो भी साधन विकल दृष्टातामासहै हेतु भी विज्ञानमैं आय गया, ताकू आचार्य उत्तर रूप कारिका कहैं हैं।

वक्तृश्रोतृप्रमातृणा बोधवाक्यप्रमाः पृथक्
भ्रातावेव प्रभाभ्रातौ बाह्यार्थौ तादृशेतरौ ॥ ८६ ॥

अर्थ—वक्ता श्रोता और प्रमाता ये इन तीनूनका बोध वाक्य प्रमाण ये तीनू ही भिन्न भिन्न हैं। यहा कहैं ये तीनू ही भ्रान्ति हैं भ्रम रूप हैं तौ भ्रान्ति स्वरूप होते प्रमाण होना भी भ्रांति ही ठहरे। फेर कहै प्रमाण भी भ्रान्ति ही होहु तौ प्रमाण भ्रान्ति स्वरूप होतैं प्रमाण अप्रमाण स्वरूप बाह्य पदार्थ प्रमेय हैं ते भी भ्रान्ति स्वरूप ठहरैं हैं। ऐसैं होते अगरग ज्ञानका अर बाह्य पदार्थका सर्व ही का लोप होय। तब सवेदनाद्वैतवादी की भी सिद्धि नाहीं होय है। इहा ऐसा जानना जो वक्ताके अर्थका ज्ञान बिना तौ वाक्य कैसे प्रवर्त बहुरि वक्ताका वाक्य नैं (न) प्रवर्तै तब श्रोता कैं अर्थका ज्ञान कैसे होय। बहुरि प्रमाता, यथा अयथा, पदार्थका निर्णय करने वाला ताके पदार्थकी प्रमाणता नैं होय तौ शब्द अर अर्थ जे प्रमेय तिनका यथार्थपणा कैसे होय। तातैं वक्ता श्रोता प्रमाताका ज्ञान वाक्य प्रमाणता न्यारे न्यारे माननैं जो सवेदनाद्वैतवादी न मानैं तौ ताका सवेदनाद्वैत भी सिद्ध न होय है ॥ ८६ ॥

आगैं संवेदना द्वैतवादी कहै जो भ्रान्ति रहित प्रमाण निर्बाध मानिये है तौ आचार्य कहैं हैं बाह्य पदार्थ भी मानना। बाह्य पदार्थ माने बिना प्रमाण अर प्रमाणा भासकी व्यवस्था नाहीं ठहरै है।

बुद्धिशब्दप्रमाणत्व, बाह्यार्थे सति नासति ।
सत्यानृतव्यवस्थैव, युज्यतेर्थाप्त्यनाप्तिषु ॥ ८७ ॥

अथ—बाह्य पदार्थके होतैं तो बुद्धिके अर शब्दके प्रमाणपणा है । अर बाह्य पदार्थके न होतैं बुद्धिके अर शब्दके प्रमाणपणा नाहीं है । जातैं अर्थ की प्राप्ति अर अप्राप्ति विषै ऐसे ही सत्य की अर असत्य की व्यवस्था युक्ति होय है । बाह्य पदार्थ विना बुद्धिकैं अर शब्दक प्रमाणता नैं होय है । इहा ऐसा जानना—जो बुद्धि तौ ज्ञान है सो तौ अपने ही वस्तुके प्राप्तिके अर्थ है बहुरि शब्द है सो परके प्रतिपादनके अर्थ है । वचन विना परका ज्ञान परके प्रत्यक्ष ग्रहण मैं नाहीं आवे है ॥ बहुरि स्वपक्षका साधना पर का पक्ष का दूषणा ऐसे ही होय है तातैं जो प्रमाणकू निर्बाध मान अपनी पक्ष साध्या चाहै ताकू बाह्य पदार्थ भी मानना या बाह्य पदार्थ विना प्रमाण प्रमाणाभास न ठहरै है । ऐसे बाह्य पदार्थ सिद्धि होतैं वक्ता श्रोता प्रमाता ये तीनू सिद्ध होय है । बहुरि तिनके ज्ञान बचन प्रमाण ये तिनू सिद्ध होय हैं ऐसे जीव शब्द कैं सज्ञापणा हेतु तैं बाह्यार्थ सहितपणा सिद्धि होय है । बहुरि याही तैं जीव की सिद्धि होय है याही तैं जीव पदार्थ कू जाणि अर प्रवर्त्तनेके निर्बाध सनाथ की सिद्धि है । ऐसे भाव प्रमेयकी अपेक्षा तौ कथचित् सर्व ज्ञान अभ्रान्त सिद्ध होय । बहुरि बाह्य प्रमेय की अपेक्षा कथचित् बाह्य पदार्थ विषै विसवाद तैं भ्रांति सिद्धि होय है अविसंवादतैं अभ्रान्ति सिद्ध होय है। ऐसैं भी कथचित् उभय, कथचित्-अवक्तव्य, कथचित् अभ्रांति वक्तव्य, कथचित् भ्रांति अवक्तव्य, कथचित् उभया वक्तव्य, ऐसैं पूर्ववत् सप्तभगी प्रक्रिया जोड़नी । ऐसें अंतरग बाह्य तत्वका निर्णय किया कू ज्ञायक उपाय तत्व कहिये ॥ ८७ ॥

चौपाइ

अतरग बहिरग विचार, पक्ष होय एकान्त निवार।
तत्व जनायौ श्री मुनिराय, अनेकात है सत्य उपाय ॥ १ ॥

इति श्री आप्त मीमासा नाम देवागम स्तोत्र की
सक्षप अर्थ रूप देश भाषा मय वचनिका
विषै सातवा परिच्छेद समाप्त भया।

इहा ताई कारिका सत्यासी भई ॥८७॥
आगै आठमा परिच्छेदका प्रारम्भ है—

अष्टम परिच्छेद ।

दोहा

देवर पौरुष पक्षका, हट जिन यथा जनाय ।
अनेकांतैं साधि जिन, नमू मुनिनिके पाय ॥ १ ॥

अब यहां कारक लक्षण उपेयतत्त्वकी परीक्षा करैं हैं । तहां प्रथम ही दैव हीतैं कार्य सिद्धि है ऐसा एकांत पक्ष माने तामैं दोष दिखावैं हैं ।

दैवादेवार्थसिद्धिश्चेदैव पौरुषत कथ ।
दैवतश्चेदनिर्मोक्ष पौरुष निष्फल भवेत् ॥ ८८ ॥

अर्थ—जो दैव हीतैं एकान्तकरि सर्व प्रयोजन भूत कार्य सिद्धि है ऐसे मानिए तौ तहां पूछिए है । जो पुण्य पाप कर्म सो पुरुष के शुभ अशुभ आचरण स्वरूप व्यापार तैं कैसें उपजे है । इहां कहै अन्य दैव जो पूर्वे था तातैं उपजे है, पौरुषतैं नाहीं तातैं कहिए । ऐसें तो मोक्ष होनेका अभाव ठहरै है । पूर्वे पूर्व दैवतैं उत्तरोत्तर दैव उपजतो करै तब मोक्ष कैसे होय पौरुष करना निष्फल ठहरै । तातैं दैव एकांत श्रेष्ठ नाहीं । इस ही कारन करि केई ऐसें एकांत करै जो धर्मका अभ्युदयतैं मोक्ष होय है । ताकामी निषेध जानना । बहुरि यहां कोई कहै जो आप पौरुष रूप न प्रवर्तै कार्यका उद्यम न करै ताकै तौ सर्व इष्टानिष्ट कार्य्य अदृष्ट जो दैव तिसमात्र तैं होय है । बहुरि जो पौरुष रूप उद्यमकरै है ताकै पौरुषमात्र तैं होय है । तहां उत्तर जो ऐसें कहनेवाला भी परीक्षावान नाहीं जातैं सांचि उद्यम करने वालेनिकै भी कोई कै तो कार्य निर्विघ्न सिद्ध होय कोईकै कार्य्य तो नैं होय अर उलटा अनर्थ

की प्राप्ति होय ऐसै देखिए है । तातैं ऐसैं है योग्यता अथवा पूर्व कर्म-सो तौ दैव है । सो ये दोऊ तौ अदृष्ट हैं । बहुरि इसभवमें जो पुरुष चेष्टाकरि उद्यम करै सो पौरुष है सो यहु दृष्ट है तिन दोऊनि तैं अर्थ की सिद्धि है । पौरुष वालेकै तो नाहीं होता देखिये है । अर दैव मात्रतैं माननें विषैं वाछा करना अनर्थक ठहरे है । मोक्षभी होय है सो परम पुण्यका उदय अर चरित्रका विशेष आचरण रूप पौरुषतें होय है । तातैं दैवका एकान्त श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८८ ॥

आगैं पौरुष ही तैं कार्य सिद्धि है, ऐसे एकान्त मानै तामैं दूषण दिखावैं हैं ।

पौरुषादेवसिद्धिश्चेत्पौरुष दैवत• कथ ।
पौरुषाच्चेदमोघ स्यात्सर्वप्राणिषु पौरुष ॥ ८९ ॥

अर्थ—जो पौरुष ही तैं अर्थकी सिद्धि है, ऐसा एकान्त पक्ष मानै ताकू पूछिए, जो पौरुष दैव तैं कैसैं होय है, तातैं जो कार्यकी सिद्धि है सो दैव की निपजाई है सो पौरुष कराये ह । जातैं ऐसा प्रसिद्ध वचन है, जो जैसी भवितव्यता होणी होय तैसी बुद्धि उपजे है । तहा पौरुष वादा फेर कहै, जो पौरुष ही तैं पौरुष होय है तो ताकू कहिए ऐसें तो पौरुष सर्व प्राणी करै है । तिनका सर्व ही का फल भया चाहिये सो है नहीं । कोई कै सफल होय है कोई के निफल होय है । इहा कहै जो जाके सम्यक ज्ञानपूर्वक, पौरुष होय है ताकै तौ सफल होय है बहुरि मिथ्या ज्ञान पूर्वक होय ताके निफल होय है ताकू कहिए जो सम्पूर्ण सम्यक ज्ञान तो सर्वज्ञ कैं है । बहुरि छद्मस्थ के तौ आपके ज्ञान मै आई जे सत्यार्थ सामग्री तिनतैं भी पौरुष तैं कार्य नैं होता देखिए है । तातै पौरुषका एकात पक्ष भी श्रेष्ठ नाहीं ॥ ८९ ॥

आगैं दोऊ पक्ष का एकान्त मैं तथा अवक्तव्य एकान्त मैं दूषण दिखावैं हैं ॥

विरोधान्नोभयकात्म्य, स्याद्वादन्यायविद्विषां,
अवाच्यतैकातेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९० ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्याय के विद्वेषीनिकैं देव पौरुष दोऊ पक्ष एक स्वरूप सभवै नाहीं। जातैं दोऊ पक्ष मैं परस्पर विरोध है। बहुरि दोऊका अवक्तव्य एकान्त पक्षभी नाही वर्णैं जातैं अवाच्य है ऐसाभी कहना वक्तव्य पक्ष है सो न वर्णैं। तातैं स्याद्वाद न्याय ही श्रेष्ठ है ॥ ९० ॥

आगैं पूछ्या जो स्याद्वाद न्याय कैसैं है ऐसैं पूछैं आचार्य्य कहैं हैं

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवत ।
बुद्धि पूर्वविपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात् ॥ ९१ ॥

अर्थ—जो पुरुषकी बुद्धिपूर्वक नैं होय तिस अपेक्षा विषैं तौ इष्ट अनिष्ट कार्य्य है सो अपने दैव ही तैं भया कहिये तहां पौरुष प्रधान नाहीं दैव का ही प्रधानपणा है। बहुरि जो पुरुष की बुद्धि पूर्व होय तिस अपेक्षा विषैं पौरुष तैं भया इष्टानिष्ट कार्य्य कहिये। तहां दैव का गौण भाव है पौरुष ही प्रधान है। ऐसे परस्पर अपेक्षा जाननी। ऐसै कथचित् सर्व दैवकृत है। अबुद्धि पूर्वक पणातैं बहुरि कथचित् बुद्धिपूर्वकपणातैं सर्व पौरुष कृत ही है। कथंचित् उभय कथचित् अवक्तव्य, कथंचित् दैवकृत अवक्तव्य, कथंचित् पौरुष कृत अवक्तव्य कथंचित् उभयकृत अवक्तव्य, एसैं सप्तभगी प्रक्रिया पूर्ववत् जोड़नी ॥ ९१ ॥

चोपाई ।

बुद्धिपूर्वमैं पाँस्प मानि देवकीयमै बुधि मिलानि
ऐसैं अनेकात जे गहैं । ते जन कार्यसिद्धि सब लहैं ॥ १ ॥

इतिश्री आप्तमीमासानाम देवागमस्तोत्रकी सक्षेप
अर्थ रूप देश भाषामय वचनिका विषै
अठमा परिच्छेद समाप्त भया ।

इहा ताई कारिका इक्याणवै भई । आगैं नवमैं परिच्छेदका प्रारम्भ है।

नवम परिच्छेद ।

दोहा ।

पुण्य पापके बध हू, स्याद्वादतैं साधि ।
कियौ यथायथ जैनपुनि नमौं निताहि तजि आधि ॥ १ ॥

अब इहा पूर्वपरिछेदमें देव कह्या सो देव इष्ट अनिष्टकार्य्यका साधन प्राणीनिकै दोय प्रकार कह्या है । एक पुण्य दूजा पाप तहाँ साता वेदनीय, शुभआयु, शुभनाम, शुभगोत्र, ऐसें च्यार तौ पुण्य कर्म्मकहे हैं । बहुरि इनतैं अन्यकर्म प्रकृति हैं ते पाप कर्म्म कहे हैं तिनका भेद तौ सिद्धान्ततैं जानना । अब इहा कहैं हैं जो इनका आश्रव बध कैसे होय है । तहा कोऊ ऐसा एकान्त पक्ष मानै जो परकूं दुःख देनमें तो पाप है अर पर कू सुखी करनेमें पुण्य है । ऐसैं एकान्त पक्षमैं दूषण दिखावैं हैं ।

पाप ध्रुव परे दुखात् पुण्य च सुखतो यदि ।
अचेतना कषायौ च बध्येयाता निमित्तत ॥ १२ ॥

अर्थ—पर जिवैं दुःख करनेतैं तौ ध्रुव कहिये एकांत करि पाप बन्ध होय है । बहुरि पर जिवैं सुख करनेतैं एकान्त करि पुण्य बंध होय है । जो ऐसा एकान्त पक्ष मानिये तौ अचेतन तृण कंटकादिक दुःख करनेवाले बहुरि दूध आदि सुख करने वाले अर अकषाय जो कोप रहित वीतराग मुनि आदि ते भी पुण्य पाप करि बधै जातैं पर विषैं सुख दुःख उपजना निमित्तका सद्भाव पाइए है । इहा कहै जो चेतन ही बन्ध योग्य है तौ वीतराग मुनि चेतन हैं ते भी बधैं । फेर

यहा कहे वीतराग मुनिनके सुख दुःख उपजावनेका अभिप्राय नाहीं। तातैं ते न बधै तौ ऐसैं कहैं पर विषैं सुख दुःख उपजावने मैं बध होय ही है ऐसा एकान्त नैं रह्या। इस हेतु तैं नाहीं भी बधै है ऐसा आया ॥ ९२ ॥

आगैं आपके दुःख करने तै पुण्य बधैं, आप सुख करनैं तैं पाप बधै ऐसा एकान्त मैं दूषण दिखावैं हैं।

पुण्यं ध्रुवं स्वतो दुःखात्पाप च सुखतो यदि ।
वीतारागो मुनिर्विद्वांस्ताभ्या युञ्ज्यान्निमित्तत' ॥ ९३ ॥

अर्थ—आपके दुःख उपजावैं तैं तौ पुण्य बध होय है अर आप के सुख उपजावैं तैं पाप बध होय है। ऐसा ध्रुव कहिये एकान्त करि मानिये तौ कषाय रहित अभिप्राय रहित मुनि तथा विद्वान कहिये ज्ञानी पडित ये भी पुण्य पाप दाजनि करि युक्ति होय बधै जातैं इनकौं निमित्तका सद्भाव है। वीतराग मुनि कैं तौ कायक्लेश आदि दुःखकी उत्पत्ति पाईए है, बहुरि ज्ञानी पटित कैं तत्व ज्ञान सतोष रूप सुख की उत्पत्ति पाइए है यह निमित्त है। बहुरि कहैं तिनकैं सुख दुःख उपजावनेका अभिप्राय नाहीं है तातैं तिनके बध नाहीं तो ऐसैं अनेकान्त सिद्धभया इस हेतुतैं बध नाहीं भी ठहऱ्या। बहुरि अकषाई भी बधै तौ बध तैं छूटना नाही ठहरै। ऐसैं दोऊ ही एकान्त श्रेष्ठ नाहीं, प्रत्यक्ष अनुमान तैं विरोध है ॥ ९३ ॥

आगैं दोऊका एकान्त मानैं तामैं दूषण दिखावैं हैं ॥

श्लोक ।

विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषा ।
अवाच्यतैकान्तेप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९४ ॥

अर्थ—दोऊ एकांतकू एक स्वरूप करि एकान्त मानैं तौ दोऊ एक स्वरूप राय नाहीं, जातैं दोऊ पक्षनिमैं स्याद्वादन्यायके विद्वेषीनकैं विरोध है तातैं कथंचित् मानना युक्त है। बहुरि अवक्तव्य एकान्त पक्ष मानैं तौ अवक्तव्य है। ऐसा कहना भी न बनैं तातैं स्याद्वाद ही युक्त है ॥ ९४ ॥

आगैं पूछे है स्याद्वाद विषैं पुण्य पापका आश्रय कैसे बणै है ऐसे पूछैं आचार्य्य कहै हैं।

विशुद्धिसक्लेशाङ्गं चेत्, स्वपरस्थं सुखासुखम्।
पुण्यपापाश्रवौ युक्तौ नचेद्वयर्थस्तवार्हत ॥ ९५ ॥

अर्थ—आप विषैं अर पर विषैं तथा दोऊ विषैं तिष्ठे उपजावै उपजे जो सुख दुःख सो जो विशुद्धि और सक्लेशका अंग होय तौ पुण्य अर पापका आस्रव युक्त होय। बहुरि जो हे भगवन्! विशुद्धि सक्लेशका अंग नैं होय तो तुम जो अरहंत तिनके मतमैं व्यर्थ कथा है। तिनकैं बंध नाहीं होय है, तहां विशुद्धतौ मंद कषाय रूप परिणामकूं कहिये है। बहुरि सक्लेश तीव्र कषाय रूप परिणामकूं कहिये है। तहां विशुद्धिका कारण विशुद्धिका कार्य्य विशुद्धिका स्वभाव ये तौ विशुद्धिके अंग हैं। बहुरि सक्लेशके कारण सक्लेशके कार्य्य मैं सक्लेशका स्वभाव ये सक्लेशके अंग हैं। बहुरि विशुद्धिके अंगतैं तौ पुण्यका आस्रव होय है। बहुरि संक्लेशके अंगतैं पापका आस्रव होयहै। तहां आर्त ध्यान रौद्र ध्यान परिणाम तौ सक्लेश स्वभावहै। बहुरि आर्त रौद्र ध्यानका अभाव आत्माका आप विषैं तिष्ठना सो विशुद्धि स्वभावहै बहुरि आर्त्त रौद्र ध्यानके कार्य्य हिंसादिक क्रियाहैं तेभी सक्लेशका अंग है। बहुरि मिथ्या दर्शन, अविरत, प्रमाद, कषाय, योग ये आर्त रौद्र ध्यानके कारण हैं तेभी संक्लेशके अंग हैं। बहुरि आर्त रौद्र ध्यानका अभाव सो

विशुद्धिका कारण है। बहुरि सम्यग्दर्शनादिक विशुद्धिके कार्य्य हैं, बहुरि धर्म्म शुक्ल ध्यानके परिणाम हैं। ते विशुद्धिके स्वभाव हैं तिस विशुद्धिके होते ही आत्मा आप विषैं तिष्ठै है। तातैं यह अनेकांत सिद्ध भया। जो स्वपरस्थ सुख दुःख हैं ते कथंचित् पुण्यआस्रवके कारण हैं। जातैं विशुद्धिके अंग हैं बहुरि कथंचित् पापआस्रवके कारण हैं जातैं संक्लेशके अंग हैं। ऐसें ही कथंचित् उभय है, कथंचित अवक्तव्य है, कथंचित् पुण्यहेतु अवक्तव्य है, कथंचित् पापहेतु अवक्तव्य है, कथंचित् उभय अवक्तव्य है, ऐसें सप्तभंगी प्रक्रिया पूर्ववत् जोडनी ॥९५॥

चौपाइ।

निजपर सुख दुःख पुण्य बधाय, जो विशुद्धिके अंग जु थाय।
बंधै पाप जो रचै कलेश, परम विशुद्ध बंध नहि लेश ॥१॥

इतिश्री आप्तमीमांसा नाम देवागम स्तोत्र की संक्षेप
अर्थरूप देश भाषा मय वचनिका विषैं
नवमा परिच्छेद समाप्त भया ॥ ९ ॥

यहाँ ताई कारिका पिछ्याणवै भई ॥ ९५ ॥
आगैं दसमा परिच्छेदका प्रारम्भ है।

दशम परिच्छेद ।

दोहा ।

बध होय अनानतैं, अल्पज्ञानतैं मुक्त ।
दोऊ मिथ्यापक्षविन, नमौं स्यातपदयुक्त ॥ १ ॥

अब यहाँ अनानतैं बध ही होय है बहुरि अल्पज्ञानतैं ही मोक्ष होय है । ऐसे दोऊ एकातपक्ष माननमैं दोप दिखावे हैं

अज्ञानाच्चेद्ध्रुवो बधो, ज्ञेयानन्त्यान्नकेवली ।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्यथा ॥ ९६ ॥

अर्थ—जो अनानतैं बध होय है । ऐसा एकांत पक्ष मानिये तो केवली न होय जातैं ज्ञेय पदार्थ अनेत हैं। बहुरि स्तोक कहिये थोरे ज्ञानतैं मोक्ष होय है ऐसा ऐकातपक्ष मानिये तो रहता अज्ञान बहुत है । तातैं बध ठहरे तब मोक्ष काहेतैं होय । ऐसैं दोउ एकात पक्षमें दोप आवै है इहाँ ऐसाजानना जो सर्व पदार्थनको जानें ताकू सर्वज्ञ केवली कहिये है सो जेत ऐसा न होय ते तै अज्ञान है ऐसे अज्ञाननै बध ही हो थो कहै तब बधतैं छूटना बिना केवला कैसैं होय बहुरि अल्पज्ञान होतैं तौ सर्वज्ञ न होय जे तैं बहुत अज्ञान अब दोप है । तातैं बध होय यह पक्ष आवै । तातैं दोऊ एकात पक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ ९६ ॥

आगैं दोऊ एकात पक्ष माने तथा अवक्तव्य एकात मानैं तामैं दोप दिखावै है ॥ ९६ ॥

विरोधान्नोभयैकात्म्यं, स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते ॥ ९७ ॥

अर्थ—स्याद्वाद न्यायके विद्वेषी हैं तिनकैं दोऊ पक्ष एक स्वरूप होय नाहीं जातैं इनमैं परस्पर विरोध है। बहुरि अवाच्यताका एकान्त पक्ष भी नाहीं बणैं जातैं यामें अवाच्य है ऐसा भी कहना न बणैं जातैं यह भी पक्ष श्रेष्ठ नाहीं ॥ ९७ ॥

आगें पूछैं हैं जो ऐसैं है तो प्राणीनिकैं बन्ध कौण हेतुतैं होय है। जाकरि इष्ट अनिष्ट कार्य्य प्राणीनिकैं होय है। सो अबुद्धि पूर्वक अपेक्षा होतैं होय है ऐसैं पूर्व कह्या सो कहना बणैं । बहुरि मुनिकैं मोक्ष काहेतैं होय है। जा करि पौरुषतैं इष्टकी सिद्धि बुद्धिपूर्वक अपेक्षातैं होय है। ऐसे पूर्वै कह्या सो कहना बणैं। अर नास्तिक मतका परिहार होय। ऐसे पूछैं इस आशंकाके निराकरणके इच्छुक आचार्य कहै हैं।

अज्ञानान्मोहतो बंधो, नाज्ञानाद्वीतमोहतः ।
ज्ञानस्तोकाद्विमोक्ष[1] स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥ ९८ ॥

अर्थ—मोह सहित अज्ञान है तातैं बन्ध है। बहुरि मोह रहित अज्ञान है तातैं बंध नाहीं है। ऐसैं कथंचित् अज्ञानतैं बन्ध है कथंचित नाहीं। ऐसा अनेकान्त सिद्ध होय है। बहुरि स्तोक ज्ञान होय। अर जामैं मोह नाहीं होय ऐसे तो मोक्ष होय है। बहुरि जो स्तोक ज्ञान मोह सहित है तातैं बन्ध होय है ऐसे स्तोक ज्ञानमैं अनेकान्त सिद्ध होय है। इहाँ ऐसा जानना जो कर्म्म बंध स्थिति अनुभाग लियें अपने फल देनेकूं समर्थ होय ऐसा कर्म्म बन्ध है सो क्रोधादि कषायनितैं मिल्या मिथ्यात्व सहित तथा मिथ्यात्व रहित केवल कषाय सहित अज्ञानतातैं होय है बहुरि जामैं क्रोधादि कषाय तथा मिथ्यात्व न मिले ऐसा अज्ञान यथाख्यात चारित्र वाले मुनिनकैं है। तिसतैं स्थिति अनुभाग रूप बन्ध नाहीं होय है। ऐसैं ही स्तोक

---

१ अष्ट सहस्रामें इसप्रकार पाठ है ' नाज्ञानाद्धि मोहिनो बन्धो न ज्ञानाद् वीतमोहत । ज्ञानस्तोकाच्च मोक्ष स्यादमोहान्मोहिनोऽन्यथा, ।

ज्ञानमें जानना । केवल ज्ञान अपेक्षा स्तोक ज्ञान छद्मस्थका कहिये तामें मोह सहिततैं बध होय मोह रहित तैं मोक्ष होय ऐसैं जानना । यहाँ भी सप्त भगा प्रक्रिया पूर्ववत जोड़णी अज्ञानतैं कथंचित बध है, बहुरि कथंचित मोह रहित अज्ञानतैं बध नाहीं है, बहुरि मोहरहित स्तोक ज्ञानतैं मोक्ष है मोह सहित स्तोक ज्ञानतैं बध है, कथंचित् उभय है कथंचित् अवक्तव्य है कथंचित् अज्ञानतैं बध अवक्तव्य है कथंचित् अज्ञानतैं बध नाहीं अवक्तव्य है, कथंचित् उभय अवक्तव्य है । ऐसैं इहाँ ताईं सर्वथा एकान्त बादी अर आप्तक अभिमानतैं दग्ध तिनके मत इष्ट तत्वमें बाधा दिखाई । अर अनेकान्त निर्बाध दिखाया ताकी दश पक्ष वर्णन करी । सत् असत्, एक अनेक, नित्य अनित्य, भेद अभेद, अपेक्षा अनपेक्षा, हेतु आगम, अंतरंग बहिरंगत्व, दैवसिद्धि पौरुषसिद्ध, पुण्यपापकाबध, अज्ञानतैंबध स्तोक ज्ञानतैं मोक्ष, ऐसैं दश पक्षका विधि निषेधतैं साधि सात सात भंग करि सत्तरि भंगका एकांत निषेध्या स्याद्वाद साध्या ॥ ९८ ॥

कारिका अठाणवै भई ।

आगै पूछै हैं जो काम आदि दोष स्वरूप जे मोहकी प्रकृति तिन करि सह चरित जो अज्ञान तातैं प्राणान कै शुभ अशुभ फलका भोगनका कारण जो पुण्य पाप कर्म तिनतैं बध कह्या सो तो हो हू परंतु सो यह कामादिकका उपजनाँ है सो ईश्वर है निमित्त जाकू ऐसा है ऐसैं पूछै इस आशंका कू दूर करनेकूँ आचार्य कहै हैं ।

कामादिप्रभवश्चित्र , कर्मबन्धानुरूपत ।
तच्चकर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते शुद्धयशुद्धित ॥ ९९ ॥

अर्थ—कामादिप्रभव कहिये काम क्रोध मान माया लोभ आदिका प्रभव कहिये उत्पत्ति जामें होय हैं । ऐसा भाव संसार है । सो चित्र

कहिये अनेक प्रकार है जातैं यामैं सुख दुख आदिक देशकालके भेद करि कार्य अनेक प्रकार होय हैं सो यह (कामादिप्रभव) विचित्ररूप ससार है। सो कर्म जीवके अनुरूप होय है। जैसा कर्म पूर्वै बाध्या था ताके उदयके अनुसार होय है। बहुरि सो कर्म पूर्वै बाध्या था सो अपने कारण-तैं बाध्या था बहुरि ते कारण जीव है। बहुरि ते जीव शुद्धि अशुद्धि के भेद तैं दोय प्रकार है। ऐसैं ससारकी उत्पत्तिका क्रम है। यहा ईश्वरवादी कहै जो कामादिकका प्रभव है। सो ईश्वरके किये होय हैं। ताकू कहिये जो ईश्वर तो नित्य है एक स्वभावरूप है। बहुरि ताकी इच्छा भी एक स्वभाव है। बहुरि ताका ज्ञान भी एक स्वभाव है। अर ये ससारमें कार्य्य हैं ते अनेक स्वभाव रूप हैं। सो एक स्वभाव होय सो अनेक स्वभाव रूप कार्य्य निकू कैसैं करै जो करै तो कार्यनिकी जौं ईश्वर कै तथा इच्छा कै स्वभाव कैं तथा ज्ञान कैं अनित्य पणा अर अनेक स्वभाव पणा आवै सो ऐसा ईश्वर मान्या नाहीं तब सिद्ध होय नाहीं बहुरि जीवन कै शुद्ध अशुद्ध भेद करने तैं केईके मुक्ति होय है कोईके ससार ही है। ऐसा सिद्ध होय है बहुरि ईश्वर वादकी चरचा विशेष है सो अष्ट सहस्री तैं जाननी ॥९९॥

आगैं पूछै हैं जो जीवनके शुद्धि अशुद्धि कही तिनका स्वरूप कहा है ऐसैं पूछें। आचार्य कहै हैं।

शुद्ध्यशुद्धी पुन शक्ती ते पाक्यापाक्यशक्तिवत् ।
साद्यनादी तयोर्व्यक्ती स्वभावोऽतर्कगोचर' ॥ १०० ॥

अर्थ—पुन कहिये बहुरि ते पूर्वोक्त शुद्धि अशुद्धि दोऊ हैं ते शक्ति हैं। योग्यता अयोग्यता है ते सुनिश्चितअसभव-द्बाधक प्रमाणतैं निश्चित करी हुई सभवै हैं जैसे माष—उड़द मूग धान्य है तिनमें पाक्यापाक्य कहिए पचनें पचावनें योग्य अर न पचने

पचायने योग्य शक्ति है सो स्वयमेव है तैसें है। बहुरि तिन दोऊनिकी व्यक्ति है प्रगट होना है सो साधि कहिए काल अपेक्षा आदिसहित है तथा अनादि कहिये आदि रहित है। बहुरि यहाँ पूछै जो सादि अनादिकाहेतें है तहाँ ऐसा उत्तर जो यह वस्तुका स्वभाव है सो यह तर्कके गोचरनाहीं। वस्तु स्वभावमें हेतुका पूछना नाहीं ऐसे कारकाका अर्थ है। यहाँटाकामें ऐसा अर्थ है। जोजीवनकै भव्यपणा है सो तो शुद्धि शक्ति है। सो तो सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्तितैं निश्चयकीजिये है। बहुरि अशुद्धिशक्ति अभव्यपणा है। सो सम्यदर्शनादिककी प्राप्ति रहित है सो यह प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ जाने हैं। अर छमस्थ आगमतैं जाने है बहुरि तिनकी व्यक्ति होय है। सो भव्य जीवकै तो शुद्धिकी व्यक्ति सादि है। जातैं याके सम्यग्दर्शन आदिक आदिसहित प्रगट होय है। बहुरि अभव्यजीवकै अशुद्धि का व्यक्ति आनादि ही है।

जातैं याकै मिथ्यादर्शन आदिक अनान्हीके हैं। बहुरि इस शक्तिकी व्यक्तिका ऐसा भी व्यारयान है। जो जीवनकै अभीप्रायके भेदतैं शुद्धिअशुद्धि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादि परिणाम स्वरूप अभिप्राय तो शुद्धि है। अर मिथ्यादर्शन परिणाम स्वरूप अभिप्राय अशुद्धि है। इनकी व्यक्ति भव्यजीवनहाके सादि अनादि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादिक न उपजै तैतैं अशुद्धिकी व्यक्ति अनादि कहिए बहुरि सम्यग्दर्शनादि स्वरूप शुद्धिकी व्यक्ति सादि कहिये ऐसे जानना। बहुरि कोई पूछे जो हेतु स्वभावमें तर्क न करना कह्या। सो प्रत्यक्ष प्रीतिमें आया पदार्थका स्वभावमें तर्क न करना है। अर जो परोक्ष होय तामें तो तर्क किया चाहिये ताका उत्तर ऐसा जो अनुमान कर प्रतीतिमें आया अर्थमें भी तर्क न करना। अरु सिद्ध प्रमाण आगम गोचर जो जीवका स्वभाव है। तामें भी तर्क न करना तातैं यह कहना भले प्रकार बण्या

जो द्रव्यादि संसार है कारण जाकूँ ऐसा कामादि प्रभव रूप भाव संसारकै कर्म बधकै अनुरूप पणा हो तैं जानिनकै शुद्धि अशुद्धिका विचित्र पणातैं युक्ति होना न होना है ॥ १०० ॥

आगै मानू भगवान पूछा जो हे समंतभद्र । सर्वज्ञ पणा आदिक उपेय तत्व बहुरि ताके उपाय तत्व जो ज्ञायक कहिये जनावनेवाला हेतुवाद अहेतुवाद अर कारकतत्व दैव पौरुष इनका अधिगमन कहिये जानना समस्त पणें तो प्रमाण करि अर एक देशपणे नयन करि करणा कह्या है। जातैं प्रमाण नयविना अन्य प्रकार इनका जानना न होय है यह नियम कह्या है। तातैं प्रथमही प्रमाणकू कहै ना जातैं याके स्वरूप संख्या विषय फल इन चारनिके विषैं विप्रतिपत्ती है।—अन्यवादी अनेक प्रकार इनकू कहै अन्यथा माने है। तिनका निराकरण विना प्रमाणका निश्चय न होय। ऐसैं पूछैं मानू आचार्य्य कहैं हैं।

तत्त्वज्ञान प्रमाण ते, युगपत्सर्वभासनम् ।
क्रमभावि च यज्ज्ञान, स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—हे भगवन् ते कहिये तुमारे मतमें तत्व ज्ञान है सो प्रमाण है। यह तौ प्रमाणका स्वरूप कहा। कैसा है तुम्हारा तत्वज्ञान युगपत् सर्वभासन कहिय एकै काल सर्वपदार्थनिका है प्रतिभासन जामैं ऐसा केवलज्ञान है बहुरि जो ज्ञान क्रम भावी है सो भी प्रमाण है जातैं यहभी तत्व ज्ञान है। ऐसा मति श्रुति अवधि मन पर्यय ये चार ज्ञान है। बहुरि कैसा हेतु होय तातैं स्याद्वाद नय करि संस्कृत है। जो सर्वथा एकांत कहिए तौ बाधा सहित होय। तातैं स्याद्वादतैं सिद्धिका निर्बाध है। ऐसे युगपत सर्वभासन अर क्रमभावी कहनेमैं प्रत्यक्ष परोक्ष रूप संख्या कही। बहुरि सर्वभासन अर क्रमरूप भासन ऐसैं कहनेतैं विषय जनाया। ऐसैं कारिका का अर्थ प्रमाण

पचावने योग्य शक्ति है सो स्वयमेव है तैसें है। बहुरि तिन दोऊनिकी व्यक्ति है प्रगट होना है सो सादि कहिए काल अपेक्षा आदिसहित है तथा अनादि कहिये आदि रहित है। बहुरि यहाँ पूछें जो सादि अनादि दिखाइहैं है तहाँ ऐसा उत्तर जो यह वस्तुका स्वभाव है सो यह तर्कके गोचरनाहीं। वस्तु स्वभावमें हेतुका पूछना नाहीं ऐसे कारकाका अर्थ है। यहाँटाकामें ऐसा अर्थ है। जोजीवनकै भव्यपणा है सो तो शुद्धि शक्ति है। सो तो सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्तिसैं निश्चयकीनिये है। बहुरि अशुद्धिशक्ति अभव्यपणा है। सो सम्यदर्शनादिककी प्राप्ति रहित है सो यह प्रत्यक्ष तो सर्वज्ञ जानै हैं। अर छमस्थ आगमतैं जानै हैं बहुरि तिनकी व्यक्ति होय है। सो भव्य जीवकै तो शुद्धिकी व्यक्ति सादि है। जातैं याके सम्यग्दर्शन आदिक आदिसहित प्रगट होय हैं। बहुरि अभव्यजीवकै अशुद्धि की व्यक्ति अनादि ही है।

जातैं याकैं मिथ्यादर्शन आदिक अनादिहीके हैं। बहुरि इस शक्तिकी व्यक्तिका ऐसा भी व्याख्यान है। जो जीवनकै अभीप्रायके भेदतैं शुद्धिअशुद्धि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादि परिणाम स्वरूप अभिप्राय तो शुद्धि है। अर मिथ्यादर्शन परिणाम स्वरूप अभिप्राय अशुद्धि है। इनकी व्यक्ति भव्यजीवनहीके सादि अनादि है। तहाँ सम्यग्दर्शनादिक न उपजै तेतैं अशुद्धिकी व्यक्ति अनादि कहिए बहुरि सम्यग्दर्शनादि स्वरूप शुद्धिकी व्यक्ति सादि कहिये ऐसे जानना। बहुरि कोई पूछे जो इहा स्वभावमें तर्क न करना कह्या। सो प्रत्यक्ष प्रीतिमें आया पदार्थका स्वभावमें तर्क न कह्या है। अर जो परोक्ष होय तामें तो तर्क किया चाहिये ताका उत्तर ऐसा जो अनुमान कर प्रतीतिमें आया अर्थमें भी तर्क न करना। अर सिद्ध प्रमाण आगम गोचर जो जीवका स्वभाव है। तामें भी तर्क न करना तातैं यह कहना भले प्रकार घट्या

जो द्रव्यादि ससार है कारण जाकूँ ऐसा कामादि प्रभव रूप मात्र ससारकै कर्म वधकै अनुरूप पणा हो तैं जीवनकैं शुद्धि अशुद्धिका विचित्र पणातैं युक्ति होना न होना है ॥ १०० ॥

आगै मानू भगवान पूछा जो हे समतभद्र । सर्वज्ञ पणा आदिक उपेय तत्व बहुरि ताके उपाय तत्व जो ज्ञायक कहिये जनावनेवाला हेतुवाद अहेतुवाद अर कारकतत्व दैव पौरुष इनका अधिगमन कहिये जानना समस्त पणें तो प्रमाण करि अर एक देशपणे नयन करि करणा कह्या है । जातैं प्रमाण नयविना अन्य प्रकार इनका जानना न होय है यह नियम कह्या है । तातैं प्रथमही प्रमाणकू कहै ना जातैं याके स्वरूप सख्या विषय फल इन चारनिके विषैं विप्रतिपत्ती है ।—अन्यवादी अनेक प्रकार इनकू कहै अन्यथा माने है । तिनका निराकरण विना प्रमाणका निश्चय न होय । ऐसैं पूछैं मानू आचार्य्य कहैं हैं ।

तत्वज्ञान प्रमाण ते, युगपत्सर्वभासनम् ।
क्रमभावि च यज्ज्ञान, स्याद्वादनयसस्कृतम् ॥ १०१ ॥

अर्थ—हे भगवन् ते कहिये तुमारे मतमें तत्व ज्ञान है सो प्रमाण है । यह तौ प्रमाणका स्वरूप कहा । कैसा है तुम्हारा तत्वज्ञान युगपत् सर्वभासन कहिये एकैं काल सर्वपदार्थनिका है प्रतिभासन जामै ऐसा केवलज्ञान है बहुरि जो ज्ञान क्रम भावी है सो भी प्रमाण है जातैं यहभी तत्व ज्ञान है । ऐसा मति श्रुति अवधि मन पर्यय ये चार ज्ञान है । बहुरि कैसा हेतु होय तातैं स्याद्वाद नय करि सस्कृत है । जो सर्वथा एकात कहिए तौ बाधा सहित होय । तातैं स्याद्वादतै सिद्धिकिया निर्बाध है । ऐसे युगपत सर्वभासन अर क्रमभावी कहनेमें प्रत्यक्ष परोक्ष रूप सख्या कही । बहुरि सर्वभासन अर क्रमरूप भासन ऐसें कहनेंतैं विषय जनाया । ऐसें कारिका का अर्थ प्रमाण

का स्वरूप सेरया विषय जनावनें स्वरूप है तहाँ ऐसा जानना जो तत्व ज्ञान कहनेतैं अज्ञानकैं तथा निराकार दर्शनकैं तथा इन्द्रिय और विषय कै भिडने रूप सन्निकर्षकैं तथा इन्द्रियकी प्रवृत्ति मात्र कैं प्रमाण पणाका निराकरण भया। यह प्रमिति प्रति करण नाहीं तातैं प्रमाण नाहीं। यहाँ कोई पूछै तत्व ज्ञानकू सर्वथा प्रमाणता कहतैं अनेकातमें विरोध आवे है ताकों कहिये यह बुद्धि है सो अनेकान्त स्वरूप है। जिस आकारतैं तत्वज्ञानरूप है तिस आकारतैं प्रमाण है। अर जिस आकारतैं मिथ्याज्ञान स्वरूप है तिस आकरतैं अप्रमाण है। ऐसें बुद्धि प्रमाण अप्रमाण स्वरूप होतैं अनेकान्तमें विरोध नाहीं है। जैसे निर्दोष नेत्रवाला चन्द्रमा सूयको टगतै कू देखै। तत्पृष्ठी सू लग्या हुवा दीसे सो चन्द्र सूय पणाकी अपेक्षातो यह देखना प्रयाण है बहुरि पृष्ठीसो लगा देखना अप्रमाण है। बहुरि तैसें ही दोष सहित नेत्रवालाकू एक चन्द्रमाका दोय चन्द्रमादीसे सो चन्द्रमा देखनातो प्रमाण है। अर दोय चन्द्रमा देखना अप्रमाण है एमें एकही बुद्धिमें अपेक्षा विवक्षातैं प्रमाण अप्रमाणपणा सभव है। बहुरि इहाँ कोई पूछे प्रमाण अप्रमाणका नामका नियमका व्यवहार कैसें ठहरै ताकू कहिये बधते घटतेकी अपक्षा प्रधान गौण कर नामका व्यवहार चले है। जैसें कस्तूरा आदिकमें सुगध बहुत देखि ताकू व्यवहारमें सुगध द्रव्य कहिये ऐसे गधकी प्रधानता करि कह्या। यद्यपि वामें स्पर्श आदि भी हैं—तथापि तिनकी गौणता है। ऐसे नामका व्यवहार है। ऐसे तत्वज्ञान प्रमाणका स्वरूप कह्या। बहुरि सांव्या प्रत्यक्ष परोक्षके भेद करि दोइ कहीं तहां प्रत्यक्षके भेद दोय। तहाँ व्यवहार प्रत्यक्षतो इन्द्रिय बुद्धिइन्द्रिय करि विषयको साक्षात् जानना बहुरि परमार्थ प्रत्यक्ष सकल प्रत्यक्ष तो केवलज्ञान अर विकळ प्रत्यक्ष अवधि मन पर्ययज्ञान ऐसें

प्रत्यक्ष प्रमाण हैं । याका लक्षण समान्य स्पष्ट विशेषनि सहित वस्तुका जानना है । बहुरि परोक्षका लक्षण सामान्य अस्पष्ट व्यवधान-सहित जानना ताके भेद पाच । स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्क अनुमान आगम ऐसैं । इनका लक्षण ऐसा जो पूर्वै अनुभवमें कारणमें आया ।—वस्तुका स्मरण होना याद आवना सो स्मृति है । बहुरि वर्तमानमें अनुभवमें आया । अर पूर्वेका यादि आवना दोऊनितैं एकपणा अर सदृशपणा आदिकका जोड़रूप ज्ञान होना सो प्रत्यभिज्ञान है । बहुरि सा य साधनकै व्याप्ति जा अविनाभाव ताकूँ जानैं सो तर्क है । बहुरि साधनतैं साध्य पदार्थका ज्ञान होना सो अनुमान है ताके भेद दोय हैं स्वार्थानुमान परार्थानुमान एसैं तहाँ साधनतैं साध्यका आपही निश्चय करि जानैं सो स्वार्थानुमान है । बहुरि परके उपदेशतैं निश्चयकरि जानैं सो परार्थानुमान है । ताके पाच अव-यव हैं । प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनय निगमन तहाँ साध्य अर साधका आश्रय दोऊनिकूँ पक्ष कहिये । ऐसे पक्षके वचनिकूँ प्रतिज्ञा कहिये तहाँ साधका स्वरूपतो शक्य अभिप्रेत अप्रसिद्ध ऐसे तीनस्वरूप है । अर साध्यका आश्रय प्रत्यक्षादिक करि प्रसिद्ध होय है । बहुरि साध्य तैं अविनाभाव व्याप्ति जाकै होय ऐसा साधनका स्वरूप है । ताका वचन कूँ हेतु कहिये । बहुरि पक्ष सारखा तथा विलक्षण अन्यठिकाणा होय ताकूँ दृष्टात कहिए हैं । ताका बचन कू उदाहरण कहिए है । सो पक्ष सारखाकूँ अन्वयी कहिए । विपरीत कूँ व्यतिरेक कहिए । बहुरि दृष्टातकी अपेक्षा लै अर पक्षकू सामान करि कहै सो उपनय है । बहुरि हेतु पूर्वक पक्षका नियम करि कहना निगमन है । इनका उदा-हरण ऐसा यह पर्वत अग्निमान है । यहतौं प्रतिज्ञा बहुरि जात यह धूम-वान है यह हेतु बहुरि जो धूमवान है सो अग्निमान है जैसे रसोई घर यह अन्वय दृष्टान्त । बहुरि जो धूमवान नाहीं तो अग्निमान नाहीं ।

जैसे जलका निवान यह व्यतिरेक दृष्टान्त यह उदाहरण । बहुरि जैसे यह धूमवान पर्वत है यह उपनय । बहुरि तातैं यह अग्निमान है यह निगमन ऐसे पाच प्रयोगका परार्थानुमान है । बहुरि आप्त जो सर्वज्ञ आदि जो साचा वक्ता ताके वचनतैं वस्तु निश्चयकीजिये सो आगम प्रमाण है । ऐसें प्रमाणकी सख्या है । अन्यवादी स्मृति प्रत्यभिज्ञान तर्ककू प्रमाण नैं मानि सँख्याका नियम थापे हैं । तिनका नियम स्मृति आदि प्रमाण विगाडै हैं । बहुरि प्रमाणका विषय सामान्य विशेष स्वरूप वस्तु है । सोही निर्बाध सिद्ध होय है । अन्यवादी सामान्यहाकूँ तथा विशेष ही कू तथा दोऊँ कूँ परस्पर अपेक्षा रहित प्रमाणका विषय थापैं हैं सो निबाध सिद्धि होय नाहीं है । बहुरि तत्वज्ञान स्याद्वादनय करि सँस्कृत है तहाँ ऐसे जानना जो तत्वज्ञान है सो कथचित् युगपत प्रतिभास स्वरूप है । जातैं सकल विषय स्वरूप है । अर कथचित् क्रम भावी है । जातैं जाका क्रमरूप विषय है । इत्यादि सप्त भग जोडना अथवा यारे न्यारे भेदनि प्रति लगावणा । जैसें तत्वज्ञान है सो कथचित् प्रमाण है । अपना प्रमिति प्रति साधकतम करण है । बहुरि कथचित् अप्रमाण है जातैं अन्य प्रमाणके भेद अपेक्षा प्रमेय है । अथवा आपके आप प्रमेय है । इत्यादि सप्तभगी जोड़नी बहुरि प्रमाण की विशेष चरचा अष्ट सहस्री टीका तैं तथा श्लोकवार्तिक तत्वार्थ सूत्रकी टीका तैं तथा परीक्षामुख ग्रन्थ तैं जाननी ॥ १०१ ॥

आगैं प्रमाणका फलका स्वरूप कहै हैं । जातैं अन्यवादी फलका स्वरूप अन्यप्रकार मानैं है ताका निराकरण होय ।

उपेक्षाफलमाद्यस्य, शेषस्यादानहानधी ।
[1]पूर्वं वा ज्ञान नाशो वा सर्वस्यास्य स्वगोचरे ॥ १०२ ॥

---

१ सनातन जैन ग्रन्थ-मालाकी मुद्रित आप्तमीमासामें 'पूर्वा' पाठ मुख्य है ।

अर्थ—आप्तस्य कहिए कारिकामें युगपत्सर्वभासनें ऐसा पहले कह्या है। सो केवलज्ञान आप लेना तिसका भिन्न फल तो उपेक्षा कहिए उदासीनता वीतरागता है। जातैं केवलीनिकै सर्व प्रयोजन सिद्ध भया ससार अर ससारका कारण हुये था ताका अभाव भया अर मोक्षका कारण उपादेय था ताकी प्राप्ति भई। अब किछू प्रयोजन न रह्या—तातैं वीतरागता है। इहा कोई पूछै केवली वीतराग के प्राणीनिकै हितोपदेश रूप वचन करणा विना कैसे प्रवर्त्तै है। ताकूं कहिए तिनके घाति कर्म्मका नाश भया तातैं मोहका विशेष जो करणा सो तो नाहीं है। अर अतरायके नाशतै सर्व प्राणीनिकूं अभयदान देनें स्वरूप आत्माका स्वभाव है सो प्रगट भया है सो ही परमदया है। सो ही मोहके अभावतै उपेक्षा है। बहुरि उपदेशरूप वचन है सो तीर्थंकरपणानामा नाम कर्म की प्रकृतिके उदयतैं विना इच्छा स्वयमेव प्रवर्तै है। तिनतैं सर्व प्राणीनिकै हितहोय है। बहुरि केवल ज्ञान प्रमाणका अभिन्न फल अज्ञानका अभाव है। बहुरि शेष कहिए मति आदि ज्ञानरूपप्रमाण ताका फल साक्षाततो अपनेविषय विषै अज्ञानका अभाव है। सो तिनतैं अभिन्न है बहुरि परपरा करि हानका त्याग उपादेयका ग्रहणका ज्ञान होना फल है तथा पूर्वा कहिये उपक्षा भी है ते तिनतैं भिन्न हैं ऐसे कथचित् फल अभिन्न कथचित् भिन्न है। यातैं एकान्तका निराकरण है ॥ १०२ ॥

आगैं पूछै हैं जो प्रमाणका फल स्याद्वान्नय सस्कृत कह्या सो स्याद्वादस्वरूप कह्या है। ऐसे पूछें आचार्य कहैं हैं।

वाक्येष्वनेकान्तद्योती गम्य प्रति विशेषणम्[1]।
स्यान्निपातोऽर्थयोगित्वात् तवकेवलिनामपि ॥ १०३ ॥

---

१ 'विशेषक' यह पाठ सनातन जैन ग्रथ मालाकी वसुनदि सैद्धान्तिक मुद्रित आप्तमीमासावृत्तिमें मुख्य है किंतु भाषा आप्तमीमासामें तथा मुद्रित अष्टसहस्रीमें 'विशेषण' यही पाठ मुख्य है।

हे भगवन् ! स्यात् ऐसा शब्द है। सो निपात है । अव्यय है। वाक्यनिविषै अनेकान्तका द्योति कहिए प्रकाशने वाला है । बहुरि गम्य कहिए साधने योग्य जानने योग्य पदार्थ है ताप्रति विशेषण है। जातैं याकैं अर्थका योगीपणा है अर्थतैं सबध है । यातैं तुमारे मतमैं कथञ्चानिके भी यह है तहाँ कोई पूछै वाक्य कहा ताका समाधान जे वर्णस्वरूप पद हैं । तिनकैं परस्पर अपेक्षारूपनिकैं निरपेक्ष समुदाय होय सा वाक्य है । अन्यवादी तो वाक्यका स्वरूप अनेकप्रकार अन्यथा कहैं हैं । सो निर्बाध नाहीं ते दसप्रकार वाक्यतो यह कहैं हैं । तिनके नाम आख्याशब्द १ सघात २ तामैं वत एसीजाति ३ एक अवयव रहित शब्द ४ क्रम ५ बुद्धि ६ अनुसहति ७ आद्यपद ८ अतपद ९ सापेक्षपद १० ऐसैं इत्यादि अनेकप्रकार कह है । तिनमैं बाधाआवे है। स्याद्वादकरि सिद्ध वाक्यका स्वरूप कह्या सोही निर्बाध है । बहुरि पूछै, अनेकान्त कहा ? ताका समाधान—सत् असत् नित्य अनित्य एक अनेक इत्यादि सर्वथा एकातका निराकरण अनेकात है । सो इन सत् आदिके लगाया स्यात् शब्द है सो तिसका विशेषण पणा करि तिसकूँ तत्वका अवयव पणा करि ताका द्योतक होय है । जातैं निपात शब्दनिकू द्योतक भी कहिऐ हैं । बहुरि यह स्यात् निपात स्याद्वादका वाचक भी है । बहुरि (वाक्य) द्योतक पक्षनिविषै भी गम्य कहिए जानने योग्य अर्थ प्रति विशेषण होय है। बहुरि स्यात् शब्द सर्वही वाक्यनि प्रति लगावणा जातैं सर्व अर्थकूँ एकही शब्द कहै नाहीं वाक्य क्रमसौ

---

१ आख्यातशब्द सघाता, जाति सघातवर्तिनी एकोनवयव शब्द क्रमो बुद्ध्यनुसहता ॥ १ ॥ पदमाद्य पद चान्त्य पद सापेक्षमित्यपि। वाक्य प्रति मतिर्भिन्ना बहुधा न्यायवेदिनाम् ॥ २ ॥

प्रवर्तै है। तातैं जिस वाक्य कै जो गम्य अर्थ सोय ताहीका द्योतक होय है। जो स्यात् शब्द न लगाइये तो अनेकान्त अर्थ जान्या जाय नाहीं एसैं जानना ॥ १०३ ॥

आगैं पूछै हैं जो कथंचित् आदि शब्द भी तौ अनेकान्त अर्थका जानना होय है। आचार्य कहै हैं—यह सत्य है। होय है यह कथंचित् शब्द भी तिस स्यात् शब्दका पर्य्याय शब्द है। सोही स्याद्वाद दिखावै है।

स्याद्वादः सर्वथैकान्तत्यागात्किंवृत्तचिद्विधिः ।
सप्तभंगनयापेक्षो हेयादेयविशेषकः ॥ १०४ ॥

अर्थ—स्याद्वाद कहिए स्यात् शब्द है सो सर्वथा एकान्तका त्यागतैं कथंचित्। ऐसा याका पर्य्याय शब्द है। जातैं कि शब्दका कथ निपजाय चित् प्रत्ययका विधान किया है तब कथंचित् ऐसा भया है। बहुरि कैसा है। सप्तभंगरूपनयनकी है अपेक्षा जाकै। बहुरि कैसाहै हेय अर उपादेय जो अर्थ ताका विशेषकहै भेद करनेवाला है। इहाँ ऐसा जानना जो यह स्याद्वाद है। सो अनेकान्त वस्तु कूँ अभिप्रायरूप अपणा विषयकरि सप्तभंग नयकी अपेक्षाले अर स्वभाव अर परभावकरि सत् असत् आदि की व्यवस्था कूँ प्रतिपादनकरै है। तहाँ सप्तभंग नयतो पूर्वै कहे ते जानू।—बहुरि नय है ते द्रव्यार्थिक पर्य्यायार्थिक इन दोयके भेद नैगम आदिक हैं तहाँ नैगम संग्रह व्यवहार ये तीनतौ द्रव्यार्थिकके भेद हैं ऋजुसूत्र शब्द समाभिरूढ एवभूत ये चारि पर्यायार्थिकके भेद हैं बहुरि इन सातनिमें नैगम संग्रह व्यवहार ऋजुसूत्र ये च्यार तो अर्थ प्रधान है। बहुरि शब्द समाभिरूढ एवभूत ये तीन शब्द प्रधान हैं। बहुरे नैगम नयके तीन भेद हैं। दोय द्रव्य कूं प्रधान गौण करि प्रवर्तै

दोय पयाय कू प्रधान गौण करि प्रवर्तै । द्रव्य अर पयायकू प्रधान गौण कार प्रवर्त ऐसैं तीन । तहां दोय शुद्ध द्रव्यकू प्रधान गौण करि प्रवर्त । तथा एक शुद्ध एक अशुद्धि ऐसं दोयद्रव्य कूं प्रधान गौण करि प्रवत । ऐसे द्रव्य नैगम दोय प्रकार बहुरि पर्य्याय नैगम तान प्रकार दोय अर्थ पर्य्यायं दाय व्यजन पर्य्याय एक अर्थ पर्याय एक व्यचन पर्याय इनकूं प्रधान गोण करि प्रवर्तै तहाँ प्रधान अर्थ पर्य्याय तान प्रकार ज्ञानार्थ पर्य्याय ज्ञेयार्थ पर्य्याय ज्ञानज्ञेयार्थ पर्य्याय ऐसें व्यजन पर्य्याय नैगम उह प्रकार शब्द व्यजन पर्य्याय, समभिरूढ व्यजन पर्य्याय, एवभूत व्यजन पर्याय शद्ध समभिरूढ व्यजन पर्याय, शद्ध एवभूत व्यंजन पर्याय, समभिरूढ एवभूत व्यजन पर्याय, एसैं बहुरि अर्थ व्यजन पर्य्याय नैगम तीन प्रकार है । ऋजुसूत्रशब्द, ऋजुसूत्रसमभिरूढ, ऋजुसूत्रएवभूत । ऐसं बहुरि द्रव्यपर्य्यायनैगम आठ प्रकार है । शुद्धद्रव्यऋजुसूत्रार्थपर्याय शुद्धद्रव्यशद्ध, शुद्धद्रव्यसमभिरूढ, शुद्धद्रव्यएवंभूत । अशुद्धद्रव्यऋजुसूत्र, अशुद्धद्रव्यसमभिरूढ, अशुद्धद्रव्यशब्द, अशुद्धद्रव्यएवभूत ऐसं बहुरि शब्दनयके काल कारक लिंग सख्या साधन उपग्रह भेदतैं भद है त मुख्य गौण करि प्रवर्तै इत्यादि नय, जे ते वचनक भेद ते ते ही नय हैं ॥ तिनके मुख्य गौण करि विधिनिषेधतैं सात भग करि प्रवर्तै हैं । सो ऐसैं नयनिकी अपक्षा ले स्याद्वा प्रवर्त्तै है । सो हेय उपादेय तत्व कू जनावै है ॥ १०४ ॥

आगै कहै है । जो ऐसा यह स्याद्वाद है । सो केवल ज्ञानकी ज्यं सर्व तत्व प्रकाशक है । सो ही दिखावै हैं ।

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्वप्रकाशने ।
भेद साक्षादसाक्षाच्च, ह्यनस्त्वन्यतम भवेत् ॥ १०५ ॥

अर्थ—स्याद्वाद और केवलज्ञान ये दोउ हैं ते कैसे हैं सर्व तत्वका प्रकाशन जिनमैं ऐसें है। बहुरि इनमें साक्षात् कहिए प्रत्यक्ष अर असाक्षात् कहिए परोक्ष ऐसैं जाननेहीका भेद है बहुरि इनमें एकही कहिये अर एक न कहिये ऐसैं अन्यतम होय तौ अवस्तु होय। इहाँ ऐसा जानना जो ज्ञान प्रत्यक्ष परोक्ष ऐसें दोय हि प्रकार हैं। इन सिवाय अन्य कोई है नाहीं बहुरि दोउ ही प्रधान हैं। जातैं परस्पर हेतुपणा इनकैं है केवल जानतैं स्याद्वाद प्रवर्तै है। बहुरि केवलज्ञान अनादि संतानरूप है तौउ स्याद्वाद तैं जो यावाजाय है। बहुरि सर्वतत्वके प्रकाशक समान कह्या ताका यहू अभिप्राय है जो जीवादि सात पदार्थ तत्व कहे तिनका कहना दोउकैं समान हैं जमैं आगम है सो जीवादिक समस्त तत्व कूँ पर कूँ प्रतिपादन करै है। तैसे ही केवली भी भाषै है। ऐसै समान हैं। प्रत्यक्ष परोक्ष प्रकाशनेंका ही भेद है। वचनद्वारैं कहनेकी अपेक्षा भी समान हैं। जातैं जिन विशेषनि कूं केवली जानै है तिनमें जे वचन अगोचर है। ते कहनेमें आवैं हीं नाहीं बहुरि **स्याद्वादनयसंस्कृत तत्वज्ञान** याका व्याख्यान ऐसा जो प्रमाण नयकरि संस्कृत है तहाँ स्याद्वादतौ सप्तभंगी वचनकी विधितैं प्रमाण है। बहुरि नैगम आदि बहुत भेदरूप नय है ऐसे संक्षेपतैं कह्या विस्तारतैं अन्य ग्रंथनितैं जानना ॥ १०५ ॥

आगैं अब **तत्वज्ञानप्रमाणस्याद्वादनयसंस्कृत** इनका और प्रकार व्याख्यान करैं हैं। तहाँ स्याद्वादतौ अहेतुवाद आगम है बहुरि नय है सो हेतुवाद है। तिन दोउनकरि संस्कृत है सो ही युक्तिशास्त्र इन दोउन करि अविरुद्ध है। सुनिश्चितासंभवद्बाधक रूप है। ऐसैं अभिप्रायवान आचार्य्य है ते—स्याद्वाद अहेतुवाद है। सो तो पहले कह ही आये हैं अहेतुवाद जो नय ताका लक्षण कहैं।

सधर्मणैव साध्यस्य साधर्म्यादविरोधत[1] ।
स्याद्वादप्रविभक्तार्थविशेषव्यंजको नय ॥ १०६ ॥

अर्थ—जा करि साध्य पदार्थ जानिये सो नय है । सो कैसा है स्याद्वाद जो श्रुतप्रमाण तातैं भेदरूपकिया जो अर्थका विशेष शक्य अभिप्रेत असिद्ध विशेषण विशिष्ट साध्य विवादमें आया ताका व्यनक है। सो कैसैं व्यंजक है साध्य के समान धर्मरूप जो दृष्टांत ताही करि साधर्म्य करिए समान धर्मपणातैं व्यंजक है सो अविरोधतैं व्यंजक है साध्यतैं विरुद्ध पक्षके साधर्म्यतैं व्यनक नाहीं है विपक्षतैं तो वे धर्म तेंही अविरोध करिही हेतुकै साध्यका प्रकाशन पणा है ऐसैं करनै तै ही हेतुका लक्षण अन्यथानुपपन्नपणा होय है । (अन्यप्रकार हेतुका लक्षण कहैं तामैं बाधा है) ऐसैं नय है सा ही हेतु है । बहुरि ऐसे नय सामान्य काभी लक्षण हाय है । जातैं स्याद्वाद तैं भेदरूपकिया जो अर्थ सो प्रधानपणातैं सर्व अंगका व्यापने वाला है । ताका विशेष—जो अल्प पणा आदिक ताका न्यारा न्यारा का कहने वाला है सो यह नय है ऐसे नयका समान लक्षण जानना हेतुतौ जो साध्य अभिप्रेतमैं आवै ताही कूं साधे है । बहुरि नय सामान्य है सो सर्व धर्मनिमैं व्यापक है ऐसे अनक धर्मनि सहित वस्तुका प्रतिपत्ती प्राप्ति ज्ञान सो तो प्रमाण है बहुरि एक धमकी प्रतीपत्ती धमतैं सापेक्ष प्रतिपत्ति है सो नय है । बहुरि प्रतिपक्षा धर्मका सर्वथा निराकरण सो दुर्नय है ॥ १०३ ॥

आगैं जो प्रमाणका विषय अनेकान्तात्मक वस्तु कहा सो कैसा है ऐसे पूछैं आचार्य कहैं हैं ।

नयोपनयैकान्तानां त्रिकालानां समुच्चय[1] ।
अविष्वग्भाव सम्बंधो द्रव्यमेकमनेकधा ॥ १०७ ॥

---

१ अविभ्राड् ऐसाभी पाठ है ।

अर्थ—तीन काल सम्बन्धी जे नय अर उपनय तिनका एकांत तिनका अविश्वग्भाव स्वरूप जो सम्बंध ऐसा समुच्चकहिए समुदाय एकता सो द्रव्य है। सो कैसा है अनेकधा कहिए अनेक प्रकार है। तहाँ नयका स्वरूप तौ पहले कह्या सो है ते द्रव्य पर्य्यायके भेदतैं तथा तिनके उत्तर भेदतैं अनेक हैं। बहुरि तिन नयन की शाखा प्रति शाखा अनेक हैं। ते उपनय हैं। बहुरि एक एक धर्मका ग्रहण करना सो तिनका एकान्त है। तिनका समुच्चय ऐसा जो धर्म अपना आश्रय रूप धर्म्मीकू छोड़ि अन्य धर्म्मी में जाना ऐसा अशक्य विवेचनपणा रूप समुदाय सो इहाँ भेदाभेद कथंचित् जानना। सर्वथा भेदाभेद में विरोध है। ऐसैं त्रिकालवर्ती नय उपनयका विषयभूत पर्य्यायविशेषनिका समूह द्रव्य है सो एकानेकस्वरूप वस्तु है। ऐसा सम्यक् प्रकार कह्या हुआ बणै है॥ १०७॥

आगैं परवादीकी आशंका विचारि अर दूर करते संते आचार्य्यकहै हैं।

मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः।
निरपेक्षा नयाः मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत्॥ १०८॥

अर्थ—इहाँ अन्यवादी तर्क करै जो तुमने वस्तुका स्वरूप नय और उपनयका एकान्तका समूहकू द्रव्य करि कह्या सा नयनका एकान्तकू तौ तुम मिथ्या कहते आवो हो सो मिथ्या नयनका समूहभी मिथ्याही हो य ताकूं आचार्य्य कहै हैं। जो मिथ्या नयनका समूह है सो तौ मिथ्या ही है। बहुरि हमारे जैनीनि कै नयनके समूह हैं सो मिथ्या नाहीं। जातैं ऐसा कह्या है। जे परस्पर अपेक्षा रहित नय हैं ते तो मिथ्या हैं। बहुरि जे परस्पर अपेक्षासहित नय हैं। ते वस्तु स्वरूप हैं। ते अर्थ क्रियाकूं करैं ऐसा वस्तुकू साधै हैं निरपेक्षपणा है सो तो प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा निराकरण स्वरूप है। बहुरि प्रतिपक्षी धर्मतैं उपेक्षा

कहिए इतरासीनतासों सापेक्षपणा है उपेक्षा न होय। अर प्रतिपक्षी धर्मकू मुख्य करै तो प्रमाण नयमें विशेष न ठहरे है प्रमाण नय दुनै यका ऐसाही लक्षण वर्णे है। दोउ धर्मका समान ग्रहण सो तो प्रमाण बहुरि प्रतिपक्षी धर्मतें उपेक्षा सा सुनय बहुरि प्रतिपक्षी धर्मका सर्वथा। त्यागसो दुनय ऐसें सर्वका उपसहार सक्षप समेटना जानना ॥ १०८॥

आगैं पूछै है जो ऐसे अनेका तात्मा अर्थ है तो वचन करि कैसे नियम की कहिए तातैं प्रतिनियत कहिए न्यारे न्यारे पदार्थनि विषैं लोककै प्रवृत्ति होय ऐसें आशका होतैं आचार्य कहैं हैं।

नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा।
तथान्यथाच सोऽवश्यमविशेषत्वमन्यथा ॥ १०९॥

अर्थ-विध रूप तथा वारण कहिए निषेधरूप ऐसा वाक्य करि अर्थ कहिये पदार्थ सो नियम्यते कहिए नियम रूप करिये है। जातैं सो कहिए पदार्थ तथा कहिए तैसा अर अन्यथा करि अन्यसा ऐसा विधि निषेध रूप अवस्तु है। बहुरि ऐसा न मानिए तो अविशेषत्व कहिए पदार्थ के विशेषण योग्यपणा न होय इहाँ ऐसा जानना जो कछू सत् रूप वस्तु है। सो सर्वही अनेकान्त स्वरूप है। जातै ऐसाहोय सोही अर्थ क्रियाका करनेवाला होइ। सर्वथा एकान्त स्वरूप तो अवस्तु है। सो अर्थ क्रिया रहित है। यहतो विधि रूपवाक्य है अन्यमती भी सरे ऐसेंही एकानेक स्वरूप मानैं हैं। परतु सर्वथा गौण मुख्य करि एक पक्षकूँ परमार्थ मानि दूजी पक्षका लोप करि अभिप्राय बिगाडै हैं। अर मानैं ऐसे हैं बौद्ध मती तो एक सवेदनकूं चित्राकार मानैं है। नैय्यायिक ईश्वरके ज्ञानकूं अनेकाकार मानैं हैं। साख्यमती स्वसवेदनकू बुद्धिमें आया पदार्थकू जानने वाला मानै है मीमसक भी फलज्ञानकूं स्वसवेदमानैं स्वरूप अर अर्थक्रिया जाननेवाला मानै हैं चार्वाकभी प्रत्यक्ष ज्ञानकूं

अपना परका जाननेवाला मानैं हैं। ऐसैं एकानेक स्वरूप मानि अर एक पक्षकूं सर्वथा मुख्य गोण करै तब अभिप्राय बिगड्या ही कहिए। ऐसैं तौ यह अनेकान्त स्वरूप वस्तुका विधि वाक्य है। बहुरि वैसैंही निषेध वाक्य है। जो वस्तु तत्व है सो किछु भी एकान्त स्वरूप नाहीं है। जातैं सर्वथा एकान्तमें सर्वथा अर्थक्रिया नाहीं है। जैसे आकाशके फूलनाहीं है। तातैं अर्थ क्रिया भी नाहीं। ऐसैं अन्यवादीनि करि मान्या जो सर्वथा एकान्तनिकी मान्यका निषेध है। जातैं सर्वथा एकान्त तौ किछू वस्तु नाहीं सो निषेधवे योग्य भी नाहीं अर परवादीनिकी मान्य भावरूप है। ताका निषेध है। ऐसैं विधि प्रतिषेध वाक्य करि वस्तु तत्व नियमरूप कीजिये है। बहुरि तैसें ही तथा अन्यथाका अवश्यभाव है जो तथा अन्यथा न होय तौ पदार्थ विशेष न ठहरैं प्रतिषेध बिना विधि विशेषण नाहीं दोउ विशेषण बिना विशेष्य पदार्थ नाहीं। इस ही कथन करि विधि प्रतिषेध दोऊको गौण करि सत् असत् आदि वाक्य विषै कोई वृत्ति जाननी ॥ १०९ ॥

आगैं अन्यवादी कहै जो वाक्य है सो सर्वथा विधिही करि वस्तु तत्वके नियम रूप करै है। ऐसे एकान्त विषैं आचार्य्य दूषणदिखावैं हैं।

तदतद्वस्तुवागेषा तदेवेत्यनुशासती ।
न सत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथतत्वार्थदेशना ॥११०॥

अर्थ—वस्तु है सो तत् अतत् ऐसैं दोऊ रूप है। जातैं यह वाक् कहिए वाणी तत् ही है। ऐसैं कहते कैसे सत्य होय है न होय। बहुरि ऐसैं असत्य वाक्यनि करि तत्वार्थका उपदेश कैसैं प्रवर्त्त असत्य वाक्यकू कौन माने। यहाँ ऐसा जानना जो वस्तु है सो तौ प्रत्यक्षादि प्रमाणका विषयभूत सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मका आधाररूप है सो

अविरुद्ध है सो अन्यवादि सत् रूपहा है तथा असत् रूपही है। ऐसा एकान्त कहैं हैं तौ कहो वस्तु तो ऐसैं है नाहीं वस्तुही अपना स्वरूप अनेकातात्मक आप दिखावै हैं तौ हम कहा करैं वादी पुकारै है विरुद्ध है रे विरुद्ध है रे तो पुकारो किछ निरर्थक पुकारनमें साध्य है नाहीं। ऐसें तत् अतत् वस्तुकूं तत् हा है—ऐसें कहती वाणी मिथ्या है। अर मिथ्या वाक्यनिकरि तत्वार्थ का दर्शना युक्त नाहीं हैं। ऐसा सिद्ध किया ॥ ११० ॥

आगैं वाक्य है सो प्रतिषेध प्रधान करि ही पदाथ कू नियम रूप करै है। ऐसा एकान्त भी श्रेष्ठ नाहीं। ऐसा कहैं हैं।

वाक्स्वभावोऽन्यनार्थप्रतिषेधनिरकुश ।
आह च स्वार्थसामान्य तादृग् वाच्य खपुष्पवत् ॥१११॥

अर्थ—वचनका यह स्वभाव है। जो अपना अर्थ सामान्यकू तो कहै है बहुरि अन्य वचनका अर्थका प्रतिषेध अवश्य करै है। तामैं निरकुश है। बहुरि इहा बौद्धमती कहै, जो अन्य वचनका प्रतिषेध है सो ही वचनका अर्थ निरकुश होहु स्वार्थ सामान्यतौ कहने मात्र है। किछू वस्तु नाहीं ताकू आचार्य्य कहै हैं। जो ऐसा वचन तौ आकाशके फुलवत् है इहा ऐसा जानना जो वचनके अपना सामान्य अथका तौ प्रतिपादन अर अन्य वचनका अथका निषेध सिवाय अन्य किछू कहनेकू है नाहीं दोउमेंसू एक न होय तौ वचन कह्या ही न कह्या समान है ताका किछ अर्थ है नाहीं। निश्चयतैं सामान्यतो विशेष बिना अर विशेष सामान्य बिना कछू दीखै है नाहीं दोऊही वस्तु स्वरूप है। इस सिवाय अन्यापोह कहै तो किछ है नाहीं तत्वकी प्राप्ति बिना केवल वचन कह करि आप तथा परकू काहेकू ठिगना ॥ १११ ॥

आगैं कहैं हैं जो निरि एकान्तकी ज्यों निषेध एकान्तका भी निराकरण तो विस्तार करि पहले कह ही आए बहुरि फिर भी निषेधही वचनका अर्थ कहनेवाले वादीकी आशंका दूर करैं हैं,

सामान्यवाग्विशेषे चेन्न शब्दार्थो मृषा हि सा ।
अभिप्रेतविशेषाप्तः स्यात्कार' सत्यलाञ्छनः ॥ ११२ ॥

अर्थ—सामान्य वाणी है सो चेत् कहिए जो विशेष विषैं शब्दार्थ स्वरूप नाहीं है । विशेषकू न जनावै तो ऐसी वाणी मिथ्या ही है। बहुरि अभिप्रेतमें लियाजो विशेष ताकी प्राप्तिका स्यात्कार है । सो सत्यार्थ लक्षण कहिए चिन्ह है । यह चिन्ह अभिप्रायमें तिष्ठते विशेष कू जनावै है । यहाँ ऐसा जाननाजो बौद्धमती अन्यापोह कहिए अन्यके निषेधमात्र वाक्यका अर्थ कहै है । सो अन्यापोह कुछ वस्तु है नाहीं । वस्तुतो सामान्य विशेषात्मक है । सो सामान्यकू कहै तब विशेष वक्ताके अभिप्रायमें गम्यमान है । ताकू भी कहनेवाला सामान्य वचनही है । जातैं याकैं स्यात् पद लागे हैं । सो अभिप्रेत विशेषके जाननेका यह स्यात्कार सत्यार्थ चिन्ह है । बहुरि अभावकू तौ कहै । अर भावकू न कहै ऐसा वचनतौ अनुक्त समान है ॥ ११२ ॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा स्याद्वादका निश्चय किया तातैं स्याद्वादही सत्यार्थ है । अन्यवाद सत्यार्थ नाहीं है । ऐसै भगवान समन्तभद्रस्वामी अतिशयरूप कहैं हैं ।

विधेयमीप्सितार्थाङ्ग प्रतिषेध्याविरोधि यत् ।
तथैवाद्यहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थिति' ॥११३॥

अर्थ—यथा कहिए जैसें जो प्रतिषेध्य पदार्थ सो अविरोधी विधेय पदार्थ है। सो यह ईप्सितार्थांग कहिए आपके वाञ्छित अभिप्रेत पदार्थका अंगभूत है तैसें ही आदेय हेयत्व कहिए ग्रहण करने योग्य अर त्याग

करने योग्यपणाभी प्रतिषेध्यतैं अविनाभावी है । ऐसैं स्याद्वादकी सम्यक् प्रकार स्थिति है तहा अस्ति इत्यादिक तौ अभिप्रायमें लिया हुआ विधेय है । तहा जो राजाका भय चोरआदिकका भय तैं धुरु विधान करे तो ताकू विधेय न कहिए जातैं ताका करनेका अभिप्राय नाही। बहुरि अभिप्रायमें भी लिया अर विधान न किया सो भी विधेय न कहिये जातैं तिसमें करनेकी योग्यता ही है विधान न भया बहुरि अभिप्रायमें भी न लिया अर कहनेभी न आया सो कितू विधेय है ही नाही, प्रतिषेध्य भी नाहीं तातैं उपक्षा उदसीनता मात्रही है । बहुरि इन सिवाय अभिप्रायमें लिया अर विधान करे सो विधेय है। सो प्रतिषेध्य जे नास्तित्व आदि तिनमें अविरुद्ध है । मोही तैसेही कथित पदार्थका अंग है । जातैं विधि प्रतिषेधकै परस्पर अविनाभाव लक्षणपणा है । ऐसैं विधेय प्रतिषेध्य स्वरूपके विशेषतैं स्याद्वाद प्रक्रिया जोडणी । अस्तित्व आदि-विशेष है । सो अपन स्वरूप करि विधेय है प्रतिषेध्य स्वरूप करि विधेय नाहीं है —ऐसे कथंचित् विधेय है । कथंचित् अविधेय है । ऐसैं प्रतिषेध्य पर लगावणा । तैसेहा जीवादि पदार्थनि पर लगावणा कथंचित् विधेय । कथंचित् प्रतिषेध्य । एसैं स्याद्वादका सम्यक् स्थिति युक्ति शास्त्रतैं अविरोध सधे है । अर पहले भाव एकान्त इत्यादि तिनैंही विधि प्रतिषेधके विरोध अविरोधका समर्थन किया है । तातैं श्री समंतभद्राचार्य भगवान प्रति कहै हैं । जो हे भगवन् हमनै निर्बाध निश्चय किया है जा युक्तिशास्त्रतैं अविरुद्ध वचन पणातैं तुम हा निरूपण हा । अन्य नाही हैं तिनके वचन निर्बाध नाहीं हैं ॥ ११३ ॥

अब यह आप्तमीमांसाका प्रारंभ किया ताका निर्वहण अर आपके ताका फल कौं आचार्य्य प्रकाशैं हैं ।

न	श्लोक	पृष्ठ
४१	क्षणिकैकान्तपक्षेऽपि प्रेत्यभावाद्यसंभव । प्रत्यभिज्ञाद्यभावान्न कार्यारम्भ कुत फलम् ॥	४९
४२	यद्यसत्सर्वथा कार्यं तन्माजनि खपुष्पवत् । मोपादाननियामोऽभून्माश्वास कार्यजन्मनि ॥	५०
४३	नहेतुफलभावादिरन्यभावादनन्वयात् सन्तानान्तरवन्नैक मन्तानस्तद्वत पृथक् ॥	५०
४४	अन्यश्चनन्यशब्दोऽय सवृत्तिन मृषा कथम् । मुख्यार्थं सवृतिन स्याद्विना मुख्यान सवृत्ति ॥	५१
४५	चतुष्कोटिर्विकल्पस्य सर्वान्तेषूक्तयोगत । नत्वा यत्वमवाच्य च तयो संतानतद्वतो ॥	५२
४६	अवक्तव्यचतुष्कोटिर्विकल्पोऽपि न कथ्यताम् । असत्वात्तमवस्तु स्यादविशेष्यविशेषणम् ॥	५२
४७	द्रव्यायन्तभावेन निषेध सत्ति न सत । असद्धदो न भावस्तु स्यान विधिनिषेधयो ॥	५३
४८	अवस्त्वनभिलाप्य स्यात्सर्वान्तै परिवर्जितम् । वस्त्वेवावस्तुता याति प्रक्रियाया विपर्ययात् ॥	५३
४९	सर्वान्तावदवक्तव्यास्तेषा कि वचन पुन । मृषैवेन्मृषैवैषा परमार्थविपर्ययात् ॥	५४
५०	अशक्यत्वादवाच्य मितिभावान्तिमबोधत । आद्यन्तोक्तिद्वय न स्यात् किं व्याजेनोच्यता स्फुट ॥	५५
५१	हिनस्त्यनभिसंधातृ न हिनस्त्यभिसन्धिमत् । बध्यते तद्वयापेत चित्त बद्ध न मुच्यते ॥	५६
५२	अहेतुकत्वान्नाशस्य हिंसा हेतुन हिंसक । चित्तसततिनाशश्च मोक्षो नाष्टान्तहेतुक ॥	५७
५३	विरुद्धकार्यारम्भाय यदि हेतु समागम । आश्रयिष्यामन योऽसावविशेषान्युक्तवत् ॥	५८
५४	कथा सन्ततयश्चैव मृषात्वादसस्कृता । स्थित्युत्पत्तिव्ययास्तेषा न स्यु खरविषाणवत् ॥	५८
५५	विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	५९

न	श्लोक	पृष्ठ
	अवाच्यतया तेऽप्युक्तिनावाच्यमिति युज्यते ॥	
५६	नित्य तत्प्रत्यभिज्ञानान्नाकस्मात्तदविच्छिदा ।	६०
	क्षणिक कालभेदात्त बुद्धयसञ्चरदादत ॥	"
५७	न सामान्यात्मनादेति न व्येति व्यक्तमन्वयात् ।	६१
	व्येत्युदेति विशेषात्त सदैकत्रादयादि सत् ॥	
५८	कार्योत्पाद क्षयो हेतुनियमात्तेषणा पृथक् ।	६२
	न ता आयद्यवस्थानादनपेक्षा स्वपुष्पवत् ॥	
५९	घर्मौलिमुवर्णार्थी नाशोत्पादस्थितिष्वयम् ।	६३
	शोकप्रमोदमाध्यस्थ्य जना याति सहेतुकम् ॥	
६०	पयोव्रतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिव्रत ।	६४
	अगोरसव्रतो नोभे तस्मात्तत्त्व त्रयात्मकम् ॥	

चतुर्थ परिच्छेद

६१	कार्यकारणनानात्व गुणगुण्यन्यतापि च ।	६५
	सामान्यतद्वन्यन्त्व चैकान्तेन यदाप्यते ॥	
६२	एकस्यानेकवृत्तिर्न भागाभावाद्वहूनि वा ।	६६
	भागित्वाद्वास्य नैक्य च दोषा गुणत्वाहत ॥	
६३	दशकालविशेऽपि स्याद्वृत्तियुतसिद्धवत् ।	६६
	समानदेशता न स्यान्मूतकारणकार्ययो ॥	
६४	आश्रयाश्रयिभावान्न स्वातन्त्र्य समवायिनाम् ।	६७
	इत्ययुक्त स सर्वथा न युक्त समवायिमि ॥	
६५	सामान्य समवायाख्यैकत्र समाश्रित ।	६८
	अन्तरेणाश्रय न स्यान्नाशोत्पादिषु की विधि	
६६	सर्वथानभिसम्बध सामान्यसमवाययो ।	६८
	ताभ्यामर्थो न सम्बन्धस्तानिश्रीणि स्वपुष्पवत् ॥	
६७	अनन्यतैकान्तगुणा संघातऽपि विभागवत् ।	६९
	असंहतत्व स्याद् भूतचतुष्क भ्रान्तिरेव सा ॥	
६८	कार्यभावेणुभ्रान्ति कार्यलिङ्ग हि कारणम् ।	६९
	उभयाभावतस्तस्य गुणज्ञातीतरच्च न ॥	

न.	श्लोक	पृष्ठ.
६१	एकत्वेन्यतरामाव शेषाभावोऽविनाभुव ।	७०
	द्वित्वसंख्याविरोधश्च संवृतिश्चेन्मृषैव सा ॥	
७०	विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	७०
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिनावाच्यामिति युज्यते ॥	
७१	द्रव्यपर्याययोरैक्य तयोरव्यतिरेकत ।	७१
	परिणामविशेषाच्च शक्तिमच्छक्तिभावत ॥	
७२	सज्ञासख्याविशेषाच्च स्वलक्षणविशेषत ।	७१
	प्रयोजनादिभेदाच्च तन्नानात्व न सर्वथा ॥	

पचम परिच्छेद

७३	यद्यापेक्षिकसिद्ध स्यान्नद्वय व्यवतिष्ठते ।	७४
	अनापेक्षिकसिद्धा च न सामान्यविशेषता ॥	
७४	विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	७५
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिनावाच्यमिति युज्यते ॥	
७५	धर्मधर्म्यविनाभावसिद्ध्यन्यो न्यवीक्षया ।	७५
	न स्वरूप स्वतो ह्येतत् कारकज्ञापकाङ्गवत् ॥	

षष्ठ परिच्छेद

७६	सिद्ध चेद्धेतुत सर्वं न प्रत्यक्षादितो गति ।	७६
	सिद्ध चेदागमात्सर्वं विरुद्धार्थमतान्यपि ॥	
७७	विरोधान्नोभयैकात्म्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् ।	७७
	अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिनावाच्यमिति युज्यते ॥	
७८	वक्तयनाप्ते यदेतो साध्यतद्धेतुसाधितम् ।	७८
	आप्तेवक्तरि तद्वाक्यात्साध्यमागमसाधितम् ॥	

सप्तम परिच्छेद

७९	अन्तरंगार्थतैकात बुद्धिवाक्य मृषाखिलम् ।	७२
	प्रमाणाभासमेवास्तत्प्रमाणादृते कथ ॥	
८०	साध्यसाधनचेशसर्यदि विज्ञप्तिमात्रता ।	८०
८१	न साध्य न च हेतुश्च प्रतिज्ञाहेतुदोषत बहिरर्थैकान्त प्रमाणाभासनिह्नवात् ।	८१

स	श्लोक	पृष्ठ
	[illegible] ॥	
८२	[illegible] ।	८१
	[illegible] ॥	
८३	[illegible] ।	८३
	[illegible] ॥	
८४	[illegible] ।	८४
	[illegible] ॥	
८५	[illegible] ।	८५
	[illegible] ॥	
८६	[illegible] ।	८६
	[illegible] ॥	

आठवाँ परिच्छेद

८८	[illegible] ।	८८
	[illegible] ॥	
८९	[illegible] ।	८९
	[illegible] ॥	
९०	[illegible] ।	९०
	[illegible] ॥	
९१	[illegible] ।	
	[illegible] ॥	

नवम परिच्छेद

९२	[illegible] ।	९२
	[illegible] ॥	
९३	[illegible] ।	९३
	[illegible] ॥	
९४	[illegible] ।	९४

श्लोक

क्षवाच्यदंशका तेषुशिनांवाच्यमिति युज्यते ॥
शिवुशिनेत्येशाश्चेत् स्वपरस्य सुखासुखम् ।
पुष्पदशाश्चवो मुण्डो न चेद्वपर्यन्तवार्हत ॥

दशम परिच्छेद

१५ अन्नमेघुणो क्यो ह्येयानन्यामकेवला । १५
ज्ञानरोधादिमोक्षवेदज्ञानाद्बहुतोन्यथा ॥
१७ गिराधामोपसत्य स्याद्वादन्यायविद्विषाम् । १६
क्षवाचेतेया तथुशिनांवाच्यमितियुज्यते ॥
१८ अन्नानन्यैहुनो क्यो नाधानद्वीतमोहत । १७
इन्नमोदादिमोक्ष स्यादमोहान्मोहितोऽन्यथा ॥
११ आर्द्रेधनवधिश्च कर्मबन्धानुरूपत । १८
शव कर्म स्वहेतुभ्यो जीवास्ते पुद्गलोदित ॥
१०० पुद्गलो पुन शक्ती ते पाचयापाक्यशक्तिवत् । १९
अन्यथा तयोरन्यथा स्वभावोऽतर्कगोचर ॥
१०१ दर्शन प्रमाणं ते युगपत्सर्वभासनम् । १०४
अन्यथा च यद्ज्ञान स्याद्वादनयसंस्कृतम् ॥
१०१ दोषावरणयो हानिर्निश्शेषास्त्यतिशायनात् । १०४
क्वचिद्यथा स्वहेत्वभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय ॥
११ बाह्योपाध्यपरावृत्तेर्योगिन प्रति विशेषवत् । १०५
सर्वज्ञोनोऽर्थसाक्षित्वात् कस्यचित्कामपि ॥
१०१ रागादय क्षयं यान्त्यागमात्तिपूर्तविद्विषि १०७
अनुमानात्तथा हेत्वादेर्विशेषक्षि ॥
११ क्वचिद्यथा स्वहेत्वादेर्बहिरन्तर्मलक्षये । १०८
क्वचित्कश्चिद्विशेषेण प्रक्षीणो दोषकल्मष ॥
१११ कश्चिन्निरवशेषात्मा बाह्यान्तरमलक्षयात् १०९
क्वचिद्यथा स्वहेत्वादेर्बहिर्मलतिरोभवः ॥
११४ क्वचित्कथञ्चिदात्मादेर्मलो नैवमशेषतः ११०
क्वचिद्विद्यानिवृत्तिर्वा मलस्यैकान्तिकी क्वचित् ॥

न	श्लोक	पृष्ठ.
१०८	मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः ।	१११
	निरपेक्षा नया मिथ्या सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत् ॥	
१०९	नियम्यतेऽर्थो वाक्येन विधिना वारणेन वा ।	११२
	तयान्यथा च सोऽवश्यमविशेषत्वमन्यथा ॥	
११०	तदतद्वस्तुवागपा तदेवत्यनुशासती ।	११३
	नसत्या स्यान्मृषावाक्यैः कथं तत्वार्थदेशना ॥	
१११	वाक्स्वभावान्यवागर्थप्रतिषेधनिरङ्कुशा ।	११४
	आह च स्वार्थसामान्य तादृग्वाच्य तपुष्पवत् ॥	
११२	सामान्यवाग्विशेष चेन्न शङ्कार्थो मृषा हि सा ।	११५
	अभिप्रेतविशेषात्त स्यात्कार तत्यलाञ्छन ॥	
११३	विधेयमीप्सितार्थाङ्गं प्रतिषेध्याविरोधि यत् ।	११६
	तथैवादयहेयत्वमिति स्याद्वादसंस्थिति ॥	
११४	इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छता ।	११७
	सम्यग्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥	
११५	जयति जगति क्षेत्राज्ञाग्रपथ्रहिमोद्गुमान् ।	११७
	विहितविषमैकान्तध्वान्तप्रमाणनयोद्गुमान् ।	
	यतिपतिरजो यस्या धृष्णा मताम्बुनिधेर्लवान्	
	स्वमतमतयस्तीर्त्या नानापरे समुपासत ॥	

इति ।

विषयसूची

नंबर	विषय	पत्र
	प्रथम परिच्छेद ॥ १ ॥	
१	प जयचंदजी छावड़ा विरचित मंगलाचरण	१
२	प्रथमननेका सम्बंध	२
३	भाषा वचनिका वननका सबंध, नम्रनिवेदन प्रार्थना प जयचंद्रजाकृत पीठिका	३
४	देवोंका आना आदि विभूतिहेतु द्वारा भगवान स्तुति करने योग्य नहीं, क्योंकि ये हेतु आप्तता सर्वज्ञताके साधक नहीं–इत्यादि	७
५	भावत् वीतराग सर्वज्ञताविषयक अनुमान	११
६	सर्वज्ञ वीतरागपना अरहंतमहीं है	१४
७	आप्तता अन्यमें नहीं	१५
८	भावाभावपक्षका एकान्त निषेध तथा उनके भाव वगैर सात भंग विकल्प	१७
९	भावाभावक सातों पक्षका अनेकान्त स्वरूपस्थापन	२२
१०	द्वितीयादि परिच्छेदमें उपयुक्तपक्षोंके सप्त भंग करनेका विधान	
	द्वितीय परिच्छेद ॥ २ ॥	
११	नैर्दैवपक्षके एकान्तका निषेध	
१२	पृथक्त्व एकान्तका निषेध	३३
१३	अद्वैत और पृथक्त्व इन दोनों पक्षोंका तथा अवक्तव्य पक्षका निषेध	३७
१४	उभयुक्त पक्षोंका अनेकान्त धर्मकर स्थापन	४१
	तृतीय परिच्छेद ॥ ३ ॥	४१
१५	नित्यत्व एकान्तपक्षका निषेध	
१६	क्षणिक एकान्तपक्षका निषेध	४६
१७	नित्यत्व क्षणिक इन दोनों पक्षोंक एकान्त और अवक्तव्यका निषेध	४९
१८	अनेकान्त धर्मकर इन सब पक्षोंकी स्थापना	५९
	चतुर्थ परिच्छेद ॥ ४ ॥	६०
१९	भव एकान्तपक्षका निषेध	६५
२०	अभेद एकान्तपक्षका निषेध	६९

नंबर	विषय	पत्र
२१	भदाभेद एकान्त और अवक्तव्य पक्षका निषेध	७०
२२	अनेकान्त धर्मका स्थापन	७१

पचम परिच्छेद ॥ ५ ॥

२३	धर्म और धर्मीकी अपेक्षाअनपक्षपक्षद्वारा एकान्तका निषेध अनेकान्तका स्थापन	७४

छट्ठा परिच्छेद ॥ ६ ॥

२४	हेतु और आगमविषयक एकान्तपक्ष निषेध अनेकान्तधर्मस्थापन	७८

सप्तम परिच्छेद ॥ ७ ॥

२५	अन्तरङ्ग बाहरङ्ग तत्वविषयक एकान्तका निषेध	७८
२६	अन्तरङ्ग बहिरङ्ग तत्वविषयक अनेकान्तकी सिद्धि	८३

अष्टम परिच्छेद ॥ ८ ॥

२७	दैव पुरुष विषयक एकान्त निषेध और अनेकान्त स्थापन	८८

नवम परिच्छेद ॥ ९ ॥

२८	पुण्य पाप बंधविषयक एकान्त निराकरण अनेकान्त समर्थन	९२

दशम परिच्छेद ॥ १० ॥

२९	अज्ञानसे बंध और अज्ञानसे मोक्ष ऐसे एकान्त विषयक मतका निषेध, और किस अनेकान्त विधिसे बंधमोक्ष हो सकता है उसका विधान	
३०	संसारकी उत्पत्तिका क्रम	९९
३१	प्रमाणका स्वरूप, संख्या विषय फल, इन चारोंका कथन	१०१
३२	स्यात् पदका स्वरूप,	१०५
३३	स्यात् पद और केवलज्ञानकी समानता	१०८
३४	नयकी हेतुवादकताका स्वरूप	
३५	प्रमाणविषयक अनेकान्तात्मवस्तुका स्वरूप तथा उसका स्वीकरण	११०
३६	प्रमाण नयके वाक्यका स्वरूप	११२
३७	स्याद्वादकी स्थिति	११५
३८	प्रवचनोंका प्रयोजन	११७
३९	पं० जयचंद जी द्वारा कियागया अन्तिम मंगल नमस्कार, प्रशस्ति	११८
४०	सर्वार्थ वचनिकाका निर्माण समय	११८

इति

इतीयमाप्तमीमांसा विहिता हितमिच्छता ।
सम्यङ्मिथ्योपदेशार्थविशेषप्रतिपत्तये ॥ ११४ ॥

अर्थ—इति कहिए ऐसें दस परिछेद स्वरूप यह आप्तमीमांसा सर्वज्ञ विशेषकी परीक्षा है सो हितकू इच्छते जे भव्यजीव तिनकैं सम्यक् उपदेश अर मिथ्या उपदेश तिनका विशेष सामर्थ्य असत्यार्थ ताकी प्रतिपत्ती हेय उपादेयरूप जानना । श्रद्धान करणा आचारण करणा ताके अर्थि हम रचा है ऐसें आचार्य्यनिनें अपना अभिप्रेत प्रयोजन कह्या है । सो आर्य सत्पुरुषनिकै विचारने योग्य है तहा हित तो मोक्ष तथा तिसका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र जानन । बहुरि सम्यक् उपदेशतौ मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रका कहना है । बहुरि मिथ्या उपदेश ज्ञान ही तैं मोक्ष है इत्यादि कहे हैं । बहुरि शास्त्रका आरंभ विषै आप्तका स्तवन मोक्ष मार्गके नेता कर्म्मभूभृतके भेत्ता विश्वतत्वके ज्ञाता ऐसा किया ताका यह परीक्षा करी है याही तैं याका नाम आप्तमीमांसा है । और आदि अक्षरके नामसे देवागम स्तोत्र है । ऐसैं जानना । आप्तकी परीक्षा की विशेष चरचा जान्या चाहौ तो अष्टसहस्री तैं जानिया यहा अर्थ संक्षेप लिखा है ॥ ११४ ॥

जयति जगति क्षेत्रापेक्षयप्रपञ्च हिमाशुमान्,
विहतविषमैकान्त ध्वान्त प्रमाणनयांशुमान् ।
यतिपतिरजो यस्या धृष्यान्मतान्मुनिवैर्नयान्,
स्वमतमतयस्तीर्थ्यानानापरे समुपासते ॥

१ यह पद्य वसुनन्दिसैद्धान्तिकरचीवृत्तिके अन्तमें ग्रंथ समाप्तिका मंगलाचरण रूप है । परंतु पं० जयचंदजी छावड़ानें इसका भाषा वचनिका नहीं लिखी है । शायद अष्टसहस्री कारके मतके अनुसार ग्रंथकर्ताकी कृति नहीं समझ कर पंडितजीने भाषा वचनिका करनेसे इसे छोड़ दिया हो ।

दोहा ॥

ज्ञान अज्ञान मोक्ष अरु बन्ध । सप्ततिकी उत्पत्ती सबध ॥
नय प्रमाण इन सबकी रीति स्याद्वाद भाषी मुनि नीति ॥ १

इति श्री आप्तमीमासा नाम देवागमस्तोत्रकी देश भाषा मय वाचनिका विषै दसमा—परिच्छेद समाप्त भया ॥१०॥
यहां ताईं कारिका एकसौ चौदह भइ ॥ ११४ ॥

सवैया २३ सा ॥

घाति निवार भये अरहन्त अघातिनिवारि सुसिद्ध कहाए ।
पंच अचार समारि अचारिज भव्यनि तारतरे श्रुत गाय ॥
अग उपग पढै उवझाय पढाय वण शिव राह लगाय ।
साधु सबै गुणमूलधरै तन साधय मोक्ष नमों मन भाये ॥ १ ॥

। दोहा ।

मगल कारण पंच गुरु । नमों विघनकी हानि ।
ग्रन्थ अंति मगल अरथ । नमस्कार ममजान ॥ २ ॥
समतभद्र अकलंक पुनि । विद्यानदि मुनिनि ।
इनके चरन नमों सदा । साधुत्रयी गुणखानि ॥ ३ ॥

सवैया २३ सा ॥

देश ढुढाहर जैपुर थान महान नरेश जगत विराज ।
न्याय चलै सबलोक भलै विधि वात्सल है सुख सों डर भाजे ।
जैन जनान हुते तिनमें जु अध्यातम शैलि भली सुसमाजै ।
हौं तिनमैं जयचद सुनाम कियो यह काम पढ़ो निज काजै ॥४॥

दोहा ॥

अष्टा दश सत साठि पट्ट विक्रम सम्वतजानि ।
चैत्र कृष्णचोदस दिवस पूण वाचनिका मानि । ५ ॥

इति ।